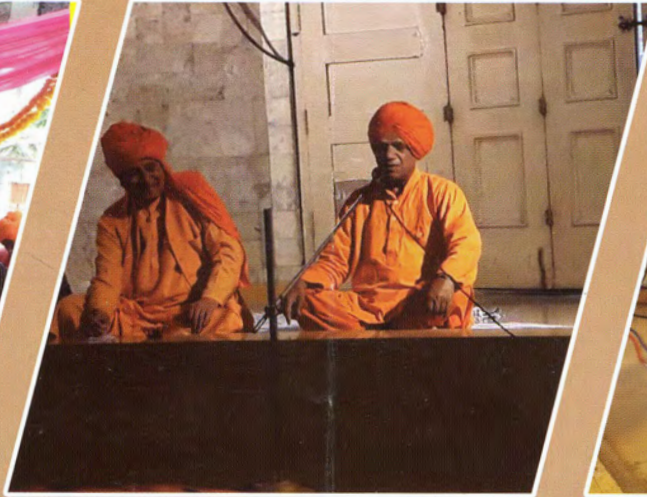




नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-10 * अंक-2 * मुम्बई * फरवरी-2019 * मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज सान्ताक्रुज 75वां वार्षिकोत्सव हीरक जयन्ती वर्ष 2019 के कुछ छायाचित्र



सद्व्यवहार

प्रो. रामविचार- एम.ए.

मन, वाणी और शरीर-व्यवहार में ये तीन साधन हैं। जो मन में होता है वही वाणी पर आता है और शरीर द्वारा व्यवहार में प्रकट होता है। यदि मन के भाव उत्तम हों तो वचन और कर्म अपने-आप ही उत्तम हो जाते हैं। मन के भावों पर हमारा वाचिक और शारीरिक व्यवहार निर्भर करता है।

भावात्मक श्रेष्ठता :

जिसमें मानसिक अथवा भावात्मक श्रेष्ठता होगी वह अपनी त्रुटि को स्वीकार करेगा। यदि उससे कोई अपराध होगा तो वह भी स्वीकार करेगा। इससे वह व्यक्ति अपनी आत्मा को ऊँचा उठा लेता है। जो व्यक्ति रूठे हुए व्यक्ति को सीधे शब्दों में यह कहकर “क्यों? भाई जी! आप मुझ से रुठे हैं।” मना लेता है वह महान् हो जाता है। जब व्यक्ति किसी से रुठ जाए तो उसके पास जाकर उसे अपना रोष प्रकट कर देना चाहिए और फिर मन में उसके प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखना चाहिए। इससे व्यक्ति द्वेष और उसके भयङ्कर परिणामों से बच जाएगा। यदि मनोवृत्ति (नीयत) स्वच्छ हो तो व्यक्ति किसी से छल-कपट नहीं करेगा। वह ऋजुता और सरलता को अपनाएगा और उसमें मानसिक, वाचिक और कार्मिक एकता होगी। कुछ लोग अपनी कमी को तो स्वीकार नहीं करते और दूसरों के ऊपर दोषारोपण करते हैं। यह भी मानसिक निकृष्टता होती है। कुछ लोगों की निकृष्ट प्रवृत्ति होती है कि वे दूसरों के अवगुण ही देखते हैं, गुण नहीं देखते। प्रयत्न करना चाहिए कि हम दूसरे की बुराई को अच्छाई से जीते। किसी के अच्छे काम को देखकर उसे प्रोत्साहित करें और बुरे काम को देख कर हतोत्साहित करें। दूसरे की उन्नति को देखकर न जलें, अपितु वैसा बनने की इच्छा करें। आध्यात्मिक व्यक्ति का लक्षण है कि दूसरे के सुख में सुख अनुभव करे और दूसरे के दुःख में दुःख अनुभव करे। दूसरों की आलोचना करने के स्थान पर अपनी आलोचना (कमियों को देखने का अभ्यास) करे। इतनी उदारता होनी चाहिए कि दूसरे के गुण को गुण कहे और जो दस बार मीठे शब्दों में बोला है और एक बार कड़वा शब्द कह गया है तो उसे क्षमा करें। जिससे आर्थिक अथवा सम्मान की हानि हुई हो उससे द्वेष (प्रेम का अभाव) न रखना, मैं इसको आध्यात्मिकता की चरम सीमा मानता हूँ। इस अवस्था तक कोई विरल महापुरुष ही पहुँच सकते हैं, सामान्य व्यक्ति नहीं। कोई व्यक्ति किसी के साथ दो अच्छाईयाँ करे और दो बुराईयाँ तो व्यक्ति दो अच्छाईयों को तो भूल जाता है, उसकी दो बुराईयों को पल्ले बाँधकर उसकी कुख्याति (बदनामी) करता रहता है। इस निर्बलता से ऊपर उठने के लिए बहुत आध्यात्मिक बल चाहिए। मनुष्य जो दूसरों से व्यवहार चाहता है वैसा ही दूसरों से करे। उत्कृष्ट मनुष्य बनने के लिए भावात्मक श्रेष्ठता का होना नितान्त आवश्यक है। मनुष्य में जितनी भावात्मक उत्कृष्टता होगी वह उतना ही महान् बनता जाएगा धृत और चालाक व्यक्ति दूसरे भोले-भाले व्यक्ति को फँसाने के लिए योजना बनाता है और सरल हृदय व्यक्ति उसकी छल पूर्ण योजना का शिकार हो जाता है। छली-कपटी ही छली-कपटी के व्यवहार को भाँप सकता है, सरल हृदय नहीं समझ सकता।

वाणी का संयम :

हमारे जीवन के दैनिक व्यवहार में वाणी का महत्वपूर्ण स्थान है। अधिक बोलने वाले का सम्मान नहीं हुआ करता। अधिक बोलने वाला व्यक्ति व्यर्थ बोल जाता है। व्यक्ति को बहुत सोच-समझकर बोलना चाहिए। किसी समय का मुँह से निकला हुआ शब्द व्यक्ति को बहुत महँगा पड़ता है। सम्बन्ध बनाकर रखने के लिए प्रत्येक समय अच्छे शब्द और अच्छे वाक्य की आवश्यकता होती है। परन्तु सम्बन्ध बिगाड़ने के लिए एक ही कुशब्द और एक

ही कुवाक्य पर्याप्त होता है। इससे वर्षों के सम्बन्ध टूट सकते हैं। यदि सम्बन्ध फिर बन जाएँ तो वह कुशब्द अथवा कुवाक्य कभी स्मरण भी हो जाए तो वह अखरता रहता है। अतः शब्द सोच-समझकर ही बोलना चाहिए। जहाँ तब हो सके प्रयत्न करना चाहिए कि दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक बोला जाए क्योंकि व्यक्ति क्रोध में कही हुई बात का बुरा मान जाता है। प्रेमपूर्वक कही हुई बात का बुरा नहीं मनाता है। मधुरवाणी से ही व्यक्ति दूसरे के मन को जीत सकता है। दूसरों की पीठ पीछे निन्दा, आलोचना और उपहास करने वाला व्यक्ति कभी दूसरों के द्वारा सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकता। पीठ पीछे कहा गया निन्दासूचक शब्द दूसरे के कानों तक किसी-न-किसी माध्यम से अवश्य पहुँचेगा, चाहे वह सात साल पश्चात पहुँचे अथवा साल के पश्चात्। यह मेरे व्यक्तिगत अनुभव की बात है। किसी की प्रशंसासूचक बात तो दूसरे को कह दे, परन्तु निन्दा-सूचक बात छिपा जाए। जो भी वचन दिया जाए वह बहुत सोच-समझ कर दिया जाए अन्यथा व्यक्ति का विश्वास उठ जाएगा। गालियाँ देना भी वाणी का दोष है, इससे भी बचना चाहिए। अश्लील बातें करने से कामवासना भड़कती है, अतः इस दुर्गुण का त्यागना अच्छा है। सत्य भाषण के व्यक्ति का विश्वास और सम्मान बढ़ता है। लड़ाई-झगड़े वाली बात दूसरे को नहीं बतानी चाहिए इससे झगड़े बढ़ते हैं। आगे कुछ कहना, पीछे कुछ कहना, यह भी श्रेष्ठ पुरुष का काम नहीं है। रहस्य की बात को प्रकट नहीं करना चाहिए।

एक बात को एक बार ही कहें। बार-बार न दुहराएँ। ऐसा करने से लोग आप से शिकायत करेंगे। जो ज्ञान की बात पूछे उसे ही बताएँ। ऐसे ही ज्ञान की चर्चा न छाँटते रहें। वक्ता यदि आज्ञा दे तो बीच में प्रश्न कर दें अन्यथा प्रवचन की समाप्ति पर करें। व्यक्ति वाणी की जितनी साधना करेगा उतना ही उसका सम्मान बढ़ेगा।

जिह्वा के स्वाद का वशीकार :

रोग तो कोई भी अच्छा नहीं होता, परन्तु शरीर को कोई-न-कोई रोग तो लग ही जाता है। रोग के साथ पथ्य (परहेज) भी आवश्यक है। अन्य रोगों की बात तो जाने दीजिए, मधुमेह में मिठाइयाँ तुली हुई वस्तुएँ, मैदे से बनी हुई वस्तुएँ और चावल आदि कई वस्तुओं का पथ्य करना पड़ता है। जब मैं पैसे हैं वस्तु खाने की आज्ञा नहीं। घर में वस्तु पड़ी हुई हैं, खाने की आज्ञा नहीं। मनुष्य को वर्जित पदार्थों के खाने की हानियों को ध्यान में रख कर पथ्य का सेवन करना चाहिए। मन को समझाना चाहिए कि वर्जित पदार्थों को खाकर दुःख पाकर जीने का क्या लाभ?

लोकप्रियता के साधन :

लोकप्रियता के लिए बड़ों के प्रति श्रद्धाभाव होना चाहिए और उनके प्रति अभिवादनशील होना चाहिए। छोटों के प्रति स्नेहभाव हो। जहाँ तक हो सके, दूसरों से ठंडे मस्तिष्क से बात की जाए। पीठ-पीछे किसी की निन्दा, आलोचना और उपहास न करें। जिसमें जो कमी देखें उसको ही बताएँ। उसकी चर्चा किसी अन्य से न करें। वचन बहुत सोच-समझ कर दें और उसकी पूर्ति करें। किसी की बुराई का उत्तर बुराई में न दें। दूसरों के सुख दुःख के साथी बनें और दूसरों की सेवा करें। आर्थिक दृष्टि से और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए और आवश्यकताग्रस्त व्यक्ति के प्रति सहानुभूति और परोपकार की भावना होनी चाहिए। उपकृत व्यक्ति में कृतज्ञता की भावना होनी चाहिए, क्योंकि कृतघ्नता बहुत बड़ा पाप है।



आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : १० अंक २ (फरवरी - २०१९)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री,
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- — एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- — वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- — आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज़' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंगिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई - ५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
सद्व्यवहार	२
सम्पादकीय	३
प्रभु प्रार्थना का अभ्यास	४
“कुछ अदर्श महापुरुषों के आदर्श वचन”	५-६
विचार शक्ति का चमत्कार	६
नित्य-आर्ष स्वाध्याय आत्मा का भोजन	७-८
महर्षि दयानन्द स्मारक, कर्णवास	८
ओङ्कारमय जगत्	९-१२
आर्य समाज सान्ताक्रुज़ का ७५ वाँ वार्षिका.	१२
भीतरी शत्रु : भ्रष्टाचार	१३-१४
‘इन्द्रिय-निग्रह’	१५-१६

सम्पादकीय

* स्वर्गवासी बनो *

दुनिया में स्वर्ग के नाम पर बहुत अन्धविश्वास फैला हुआ है, सभी मतपंथों में स्वर्ग की झूठी कल्पना बताई गयी है।

कोई कहता है स्वर्ग सातवें आसमान में है, वहाँ दूध, घी, शहद की नदियां बहती हैं, ७२ हूरें मिलती हैं, आप कितना भी भोग विलास करो कभी बुढ़ापा नहीं आता....

कोई कहता है स्वर्ग चौथे आसमान में है, वहाँ खाने-पीने की, भोग विलास की सारी सामग्री मौजूद है बस मरने से पहले पादरी को पैसे जमा करा दो वह स्वर्ग में सब व्यवस्था कर देगा।

इस प्रकार की काल्पनिक कहानियों से लोगों को मूर्ख बनाया जा रहा है।

यहाँ सत्य का विचार करते हैं। स्वर्ग शब्द का अर्थ है सुख, जहाँ रहने से आपको सुख की सभी वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं, जहाँ रहने से आपको सुख मिले वही जगह स्वर्ग है।

आचार्य चाणक्य ने चाणक्य नीति में लिखा है जिस घर में चार काम होते हैं वही घर स्वर्ग है-

पहला जिस घर में ईमानदारी व परिश्रम से धन कमाया जाता हो और उस धन में से दान दिया जाता हो।

दूसरा जिस घर के लोग आपस में मीठी वाणी बोलते हो।

तीसरा जिस घर में माता-पिता आदि बड़ों का, गुरु का, अतिथि का, सम्मान होता हो, पति-पत्नी एक दूसरे का सम्मान करते हों।

चौथा जिस घर में ज्ञानी लोगों का, विद्वानों का मान-सम्मान होता हो व घर के सदस्य ज्ञान प्राप्ति में रुचि रखते हों।

ये चार विशेषताएं जिस स्थान पर घर में हो वही घर स्वर्ग है। वही सुख-शान्ति रहती है। वहीं के लोगों को चैन की नींद आती है।

वैदिक धर्म भी इसी स्वर्ग की बात करता है। अथर्ववेद का मन्त्र कहता है -

स्वर्ग किसी देशविशेष (स्थान विशेष) या लोकविशेष का नाम नहीं है, वरन् उस अवस्था को स्वर्ग कहते हैं, जिस अवस्था में मनुष्य को शारीरिक, आत्मिक, पारिवारिक आदि सब प्रकार के सुख प्राप्त हैं, जिस अवस्था में मनुष्य को कोई शारीरिक क्लेश, मानसिक पीड़ा नहीं सताती, मातापिता तथा सन्तान का सुख प्राप्त हो, शरीर सुन्दर तथा सुडौल हो, कोई त्रुटि न हो, इसकी प्राप्ति का साधन सद्विचार तथा उत्तम सदाचार है। संक्षेप में 'सुखविशेष भोग तथा उसकी सामग्री' का नाम स्वर्ग है। (यह स्वर्ग मनुष्य के अपने भीतर, अपने निवास, परिवार, समाज व देश में ही होता है व माना जा सकता है।

अतः हमें सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए कि हम ऐसी बात करें, ऐसे कार्य करें जिससे आपसी प्रेम बढ़े, सहयोग बढ़े जिसके फलस्वरूप घर में खुशियां आएँ, परिवार भौतिक उन्नति के साथ साथ अध्यात्मिक उन्नति भी करे। जिससे हमारा घर स्वर्ग बने और हम सभी जीते जी स्वर्गवासी बनें।

सन्दीप आर्य

मो.: ९९६९ ०३७ ८३७

प्रभु प्रार्थना का अभ्यास

- सत्यकाम विद्यालंकार

प्रभु-प्रार्थना द्वारा हम उस दिव्य शक्ति का आह्वान करते हैं जो हमें समर्थ ही नहीं बनाती, बल्कि अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पदा को जगत के अर्थ समर्पित कर देने के योग्य बनाती है। प्रभु हमारे माध्यम से ही अपनी सृष्टि का विस्तार करता है। हम उसकी योजना को कार्यान्वित करने के साधन-मात्र हैं।

प्रार्थना का अर्थ याचना नहीं है। अपने अधिकार से अधिक माँगना, चाहे वह प्रभु से ही हो, अनीतिपूर्ण कार्य है।

प्रार्थना का अभिप्राय अपनी श्रद्धा को बल देना और विश्व की दिव्य शक्तियों के लिए अपने हृदय का द्वार खोलना है।

प्रार्थना के ढंग और माध्यम भिन्न हो सकते हैं, किन्तु-फल सबका एक ही है। प्रार्थना करने की विधियाँ भी सहस्रों हैं, भिन्न-भिन्न हैं।

मेरे एक मित्र मोटर चलाते समय प्रार्थना करते हैं। उनका विश्वास है कि उस समय उन्हें सद्जीवन की प्रेरणा मिलती है। विमान चालक उस समय प्रार्थना करता है जब उसका वायुयान पृथ्वी और आकाश के बीच झूलता है। एक और आदमी को मैं जानता हूँ जो अपने विचारों को टाइप करके ईश्वर से प्रार्थना करता है। उसका कहना है कि इससे उसे बड़ी शान्ति मिलती है।

हम यदि प्रार्थना के बाद अपने को पूर्ण समर्पित अनुभव करते हों तो प्रार्थना सफल समझनी चाहिए। प्रार्थना की निश्चित और परम्परागत विधियों में आस्था रखाना महत्वपूर्ण नहीं है। किसी भी विधि से प्रार्थना पूर्ण हो सकती है।

यह भी जरूरी नहीं कि हमारी प्रार्थनाएँ शब्दों के माध्यम से ही व्यक्त हों। प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका पर्ल-बक का कहना है कि उन्होंने कभी शब्दों द्वारा प्रार्थना नहीं की, पर सदा उन्हें अपनी प्रार्थनाओं का उत्तर मिला। जब हम सौन्दर्य, अच्छाई या सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं, तो भी इस प्रकार विराट शक्ति के सम्मुख झुककर अपने को दृढ़ बनाते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए हमारी प्रभु से यह प्रार्थना होनी चाहिए-

“हे प्रभु मुझे अपनी शान्ति का साधन बनने दो। जहाँ घृणा है वहाँ मैं प्रेम के बीज बोऊँ, जहाँ भ्रम-विभ्रम के अन्धकार हैं वहाँ श्रद्धा का प्रकाश लाऊँ, जहाँ दुःख है यहाँ मेरे द्वारा सुख पहुँचे और जहाँ निराशा है वहाँ मैं आशा का सन्देश दूँ। मैं दूसरों से सांत्वना की भिक्षा न माँगूँ बल्कि सबको सांत्वना प्रदान करने का माध्यम बनूँ। यह अशा न करूँ कि दूसरे मुझे समझें, मैं ही उन्हें समझूँ मैं ही स्वयं सबसे प्रेम करूँ क्योंकि जब हम दूसरों को देते हैं तभी पाते हैं। जब क्षमा करते हैं क्षमा पाते हैं और जब हम मृत्यु की शरण जाते हैं तो एक नव-जीवन प्राप्त करते हैं।”

प्रभु से अपने लिए कुछ न माँगकर केवल जगत के कल्याण के लिए सद्बुद्धि और कार्यशक्ति माँगना ही सर्व श्रेष्ठ प्रार्थना है। तभी प्रभु हमारे जीवन को मानव कल्याण के लिए समर्थ बनाकर सार्थक बनाता है।

यह सामर्थ्य हमें तभी प्राप्त होगा जब हम अपने पर विश्वास करेंगे।

जब हम अपनी प्रार्थना केवल कष्ट-निवारण की याचना या स्वार्थ-सिद्धि के लिए करते हैं तो इस प्रार्थना को प्रार्थना नहीं कह सकते।

प्रार्थना का अर्थ माँगना नहीं बल्कि अपनी आत्मा को विश्वात्मा में मिलाना या अपने भीतर के प्रकाश को बाहर फैलाना है। इस विस्तार में ही सुख है।

प्रार्थना के साथ रोना शोभा नहीं देता।

जब हम प्रार्थना के लिए देवालय में जाएँ तो हमें केवल देवता से मधुर

मिलन की उत्कण्ठा लेकर ही जाना चाहिए।

प्रभु हमारे शब्दों में बँधी प्रार्थना नहीं सुनते। वे केवल हृदय की भाषा को जानते हैं।

हम तो प्रभु से यही कह सकते हैं- “हे प्रभु ! हम तुमसे क्या माँगे? मन में उठने से पहले ही तुम हमारे मनोरथों को जानते हो। हमारे मनोरथ तुम्हीं हो हम तुमसे तुमको ही माँगते हैं। तुम हमें अपना ही अंश प्रदान करो तो हमें सब कुछ मिल जाएगा।”

प्रभु अपने सब रूपों में पूर्ण हैं। प्रार्थना के फलस्वरूप हमें उनसे पूर्ण शान्ति, पूर्ण आनन्द और तन-मन का पूर्ण स्वास्थ्य मिल सकता है। मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का यह एक आदर्श साधन है।

काल्पनिक स्वप्न लेना भी श्रेष्ठ है

एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने एक स्थान पर लिखा है : हम अपने यथार्थ पर नहीं, स्वप्न पर जीते हैं। यदि स्वप्न की ज्योति बुझ जाए, तो हम भी पर्वतों की भाँति जड़ हो जाएँ। सचमुच स्वप्नों के गर्भ में हमारे विकास के लिए अमृत-कुण्ड भरा है। इससे हमारी आशा, महत्वाकांक्षा, उत्साह, रुचि सबको प्राण-रस मिलता है। हाँ, कर्म का संयोग उन्हें अवश्य मिलना चाहिए।

हमारे कर्म-संकुल जीवन में आकांक्षा के जो भावचित्र बने हैं, यदि उनमें हमारे स्वप्नों की तूलिकाएँ इन्द्रधनुषी रंग न भरें तो हमारा सारा जीवन एक असह्य भार बन जाए। स्वप्न हमारे वास्तविक जगत के भावात्मक अभावों की पूर्ति करते हैं और हमारे जीवन की कुरुपता का परिमार्जन करते हैं। दि आर्ट आफ लिविंग के लेखक आन्द्रे मारोस का कहना है- ‘जब बुद्धि के असंयत बोझ और विवेक के हठीले अंकुश से संपन्न जीवन की कविता के पंख थक जाएँ और तुम्हें कर्म के मरुस्थल से ले जाने के लिए जीवन की तृष्णाएँ तुम्हारे आग्रह के बावजूद मना कर दें तो या तो जीते-जी मृत्यु का वरण कर लो और या मेरी इन पक्तियों पर अमल करो और नवजीवन प्राप्त कविता के पंखों पर बैठकर, चाहे क्षण भर को ही इस ब्रह्माण्ड के सारे वैभव को अपनी बाँहों में समेट लो। और ये हैं वे पक्तियाँ, जिनका एक-एक अक्षर अनुभूति की स्याही से लिखा गया है : “जब मन का वायु तू हारी जीवन-सरिता में तरंग पैदा करने में असमर्थ हो जाए तो उस पर कल्पना का अमृत छिड़को-तन के द्वार बन्द करके मन को सीमाहीन छोड़ दो और शिशु की भाँति स्वयं को दिवास्वप्नों में लय कर दो। इस इतना ही काफी है। तुम्हारे रन्ध्र-रन्ध्र में अमृत का संचार होने लगेगा।”

ये काल्पनिक स्वप्न मनुष्य के मन को आशावादी बनाते हैं। मन में नया उत्साह भरते हैं। मन में नया उत्साह भरते हैं, नई उमंगों को जन्म देते हैं। जीवन में कोई न कोई उमंग रहना आवश्यक है। उसी में किसी स्वप्न को साकार करने की इच्छा से ही मन को सच्चा सन्तोष मिलता है और इस सन्तोष से मन की स्वस्थता बनती है। इसलिए अपने कल्पना में कुछ स्वप्नों का स्थान बनाना मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।

आशावाद

जीवन की सार्थकता भविष्य के प्रति हमें सदैव आशान्वित करती है। आशान्वित व्यक्ति ही स्वप्न-योजक जीवन बिता सकता है। आज की कठिनाइयों से चिन्तित होकर हमें निराश और अविश्वासी नहीं बनना चाहिए।



“कुछ अदर्श महापुरुषों के आदर्श वचन”

- खुशहालचन्द्र आर्य

भारत के गौरवशाली इतिहास का, जब हम अवलोकन करते हैं तो हमें अनेकों महापुरुष ऐसे मिलते हैं, जिनके जीवन-चरित्र बहुत ऊँचे और आदर्श थे। उनके जीवन से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। कुछ आदर्श महापुरुषों के कुछ आदर्श वचन, हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनको पढ़कर चिन्तनशील व मननशील व्यक्ति उनके आदर्श वचनों से आज का दुःखित और नादान व्यक्ति बहुत कुछ सीख सकता है। वे वचन इसी भाँति हैं।

१- श्री राम:- जब श्रीराम, माता सीता को लंका से लाने के लिए समुद्र के इधर की तरफ वानरों की सेना तैयार कर रहे थे, उसी समय विभिषण अपने भाई रावण को सीता जी को देने के लिए समझाया, जब वह नहीं माना और उसको लंका से निकाल दिया, तब विभिषण श्री राम की शरण में गया। श्री राम ने विभिषण को देखते ही समझ गये कि यह रावण का निकाला हुआ मेरे पास आया है। इससे हमको युद्ध जीतने में काफी मदद मिलेगी। यह समझकर विभिषण को देखते ही श्री रामने कहा “आओ! लंकेश”। यह सुनकर लक्ष्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहा “भैया! आपने विभिषण को लंकेश कैसे कह दिया। अभी तक तो युद्ध भी शुरू नहीं हुआ है और युद्ध शुरू होने के बाद, हम जीतेगें या हारेगें इस बात का भी नहीं पता, अपने बिना विचारे ही विभिषण को लंकेश कैसे कह दिया। इस प्रश्न के उत्तर में श्री रामने जो कहा, वह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। श्री राम ने कहा, लक्ष्मण! पहली बात तो यह है कि हम सत्य पर हैं; सत्य की सदैव विजय होती है, इसलिए हम जीतेगें ही। यदि किसी कारण वश हम, हार भी गये तो अयोध्या का राज्य तो मेरे पास है ही, मैं विभिषण को अयोध्या का राज्य दे दूंगा, तब लंकेश नहीं तो अयोध्येश तो अवश्य ही बना ही दूंगा। इसमें कौनसा कार्य पड़ता है। अयोध्या भी लंका से छोटा राज्य नहीं है।

२-हनुमानजी:- जब श्रीराम और लक्ष्मण, माता सीता की खोज में साधु वेश में धूम रहे थे तब किष्कंधा पर्वत पर सुग्रीव और हनुमान बैठे वार्तालाप कर रहे थे। जब सुग्रीव ने श्रीराम और लक्ष्मण को अपनी ओर साधु वेश में आते देखाता सुग्रीव को भ्रम हो गया कि ये दोनों भाई बाली के भेजे हुए गुप्तचर तो नहीं हैं, इस की जानकारी के लिए सुग्रीव ने हनुमान जी को भेद जानने के लिए इन साधुवेश धारियों के पास भेजा। हनुमान जीने नीचे उतरकर श्रीराम और लक्ष्मण से इतने सुन्दर ढंगसे बात की जिससे श्रीराम प्रभावित होकर लक्षण से बोले, हे लक्ष्मण! यह व्यक्ति जो हमसे इतनी दूर से बात कर रहा है, इससे कहीं भी व्याकरण की अशुद्धि नहीं हुई है। मुझे यह व्यक्ति चारों वेदों का विद्वान जान पड़ता है, तभी इसने हमसे इतने सुन्दर ढंगसे बात की है। यहाँ मैं समझाना चाहता हूँ कि जंगलों का पहाड़ों पर रहने वाली एक वानर जाति थी। वेभी मनुष्य होते थे और विद्वान भी होते थे। हनुमान जी, सुग्रीव, बाली व अंगद सभी वानर जाति के थे। इसी लिए हनुमान जी को श्रीराम ने चारों वेदों का विद्वान बताया और व्यक्ति बोलकर सम्बोधित किया। यदि हनुमान जी बन्दर होते तो उसका बन्दर बोलकर संबोधित करते। इसलिए हनुमान जी आदि पुरुषों

को बन्दर बताना अनुचित है।

३- श्री कृष्ण- श्री कृष्ण एक अति चतुर वाक्पटु व वेदों के विद्वान थे। वे हर समस्या का समाधान निकालना जानते थे। वे महाभारत युद्ध में पाण्डवों का पक्ष सही होने से उनकी तरफ से लड़ रहे थे। जब दुर्योधन किसी भी रूप में पाण्डवों को राज्य देना नहीं चाहता था। वह अन्तमें श्री कृष्ण, दुर्योधन के पास जाते है और सिर्फ पाँच गाँव पाँचों पाण्डवों के लिए मांगते है, तब दुर्योधन ने कहा, हे कृष्ण! आप तो पाँच गाँव देने की कह रहे हो, मैं तो बिना युद्ध किये एक सूई की नोक के बराबर भी जमीन देने वाला नहीं। तब श्री कृष्ण निराश हो कर वहाँ से आ रहे थे तब दुर्योधन ने कहा, हे कृष्ण! कम से कम भोजन करके तो जाओ, तब श्री कृष्णने एक व्यवहारिक बात यह कही, ऐ दुर्योधन! भोजन दो ही स्थिति में किया जाता है। पहली स्थिति जब अति भूख लगी हुई हो, दूसरी स्थिति, जब खिलाने वाले का प्रेम हो। यहाँ दोनों ही स्थितियाँ नहीं हैं। न मुझे अति भूख लगी हुई है और न आपका प्रेम है। इसलिए भोजन करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह कहकर श्री कृष्ण महात्मा विदुरके घर जाकर भोजन किया।

४- शेर शिवाजी :- शेर शिवाजी बहुत ही बहादुर, साहसी, चतुर व चरित्रवान व्यक्ति थे। उनके जीवन की एक घटना है जिससे उनके महान चरित्रका परिचय मिलता है। घटना इस प्रकार है कि उनके दो सैनिक अपने राज्य में कहीं धूम रहे थे। उनको रस्ते में एक मुस्लिम सुन्दर युवती मिल गई। उन्होंने सोचा, इस सुन्दर मुस्लिमयुवती को तो अपने राजा शेर शिवाजी को भेंट देनी चाहिए ताकि वे खुश होकर हमको काफी इनाम देवे। इसी उद्देश्य से वे इस युवती को शेर शिवाजी के पास ले आये और उन्होंने कहा ‘राजन! हम आपके लिए एक बहुतअच्छा तौफा लाये हैं। शिवाजी ने कहा दिखाओ ! क्या लाये हो? तब उन्होंने उस युवती को शिवाजी के सामने खड़ा कर दिया। युवती को देखकर शिवाजी की आँखें लाल हो गई और अपने सैनिकों से कहा कि तुमने अभी तक भी अपने राजा को नहीं पहचाना और कहा कि यह मेरी बेटी है और अपने पिता जीसे मिलने आई है। मेरा फर्ज है कि अपनी बेटी को अच्छी प्रकार कपड़े व जेवर से सज्जा धजाकर उसको अपने पति के पास भेजू सो तुम अच्छे कपड़े और जेवर लाओ और मैं इसको सुसाज्जित करके इसके पति के पास भेजूंगा और वैसा ही किया। यह था शेरशिवाजी का चरित्र जिससे अब के विधायक सासंद व मान्त्रियों को शिक्षा लेनी चाहिए।

५- महाशय राजपाल :- मुसलमानों ने श्री कृष्ण और महर्षि दयानन्द पर बड़े-बड़े अश्लील आरोप लगाये तब महाशय राजपाल ने आर्य विद्वान पं. चम्पूति एम-ए से कहा कि आप मोहम्मद साहब की जीवनी पर ऐसी पुस्तक निकालो मुसलमानों को ज्ञात हो जाये कि मोहम्मद साहबका जीवन कैसा था? चम्पूतिजी ने कहा कि पुस्तक तो मैं ऐसी लिख दूँगा परन्तु उसमें मेरा नाम नहीं लिखूँगा कारण मुसलमान मुझे मार देंगे। तब महाशय जी ने कहा कि ठीक है, पुस्तक बिना लेखक के नाम की मैं छाप दूँगा, चाहे मुझे मृत्यु दण्ड भी झेलना पड़े परन्तु लेखक का

नाम नहीं बता अगो। तब चमूपति जी ने “रंगीला रसूल” नाम की पुस्तक लिखी और उसमें अपना नाम नहीं लिखा। यह पुस्तक मुसलमानों ने पढ़ी तो उन्होंने राजपाल जी को कहा कि आप लेखक का नाम बतला दो, हम आपको कुछ नहीं कहेंगे। राजपाल जीने साफ इनकार कर दिया कि मैं लेखक का नाम नहीं बताऊंगा। तब मुसलमानों ने राजपाल पर मुकदमा कर दिया। मुकदमे में राजपाल जी जीत गये, परन्तु जब वे कोर्ट से बाहर निकले तो एक धर्मान्ध मुसलमान ने उनको गोली मारकर स्वर्ग लोक में पहुंचा दिया। उस शहीद को आज भी याद किया जाता है।

६-स्वामी देव दयानन्द :- स्वामी देव दयानन्द एक महान सन्त, त्यागी, तपस्वी परोपकारी व बाल- ब्रह्मचारी सन्यासी थे। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण व पल दूसरों का परोपकार व कल्याण करने में ही बीता। उनका कोई बुरा भी करता तो वे उसका भला ही करते थे। एक दिन किसी व्यक्ति ने स्वामीजी को पान में जहर दे दिया। उसके जाने के बाद स्वामी जी को जहर का ज्ञान हुआ तो वे गंगा नदी पर जाकर न्यूली क्रिया से जहर निकाल दिया और अपने स्थान पर आ गये। एक मुस्लिम तसीलदार स्वामीजी का भक्त था। उसको जब इस बात की जानकारी हुई तो उसने जहर देने वाले को पकड़ लिया और स्वामी जी के पास ले जाकर कहा कि इस व्यक्ति ने आपको जहर दिया है, आप कहो तो इसे जेल में डाल दूँ, तब स्वामी जीने कहा, मैं तो लोगों को जेल से छुड़ाने के लिए आया हूँ, जेल में डालने के लिए नहीं। यह सुनकर तसीलदार अचम्भित रह गया। यह थी स्वामी जी की महानता। पाठकगण इस लेख को पढ़ें और ऐसा ही बनने का प्रयत्न करें, तभी मेरा परिश्रम सफल होगा।

गोविंद रामआर्य अण्ड सन्स

१८० महात्मा गान्धी रोड (दोलल्ला) कलकत्ता-७००००७

मो.: ९८३०१३५७९४ फोन : २२१८ ३८२५ (०३३)

आर्य समाज सांताक्रुज में हीरक जयंती महोत्सव आर्यवीर सम्मेलन सम्पन्न.

आर्य समाज सांताक्रुज में हीरक जयंती महोत्सव पर आर्यवीर मुम्बई दल द्वारा आर्यवीर सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसके आयोजक नरेंद्र जी शास्त्री, महामंत्री आचार्य धर्मधर आर्य, कोषाध्यक्ष ज्ञानप्रकाश आर्य रहे। जिसमें अध्यक्ष के रूप में मुख्य अतिथि श्री स्वामी देव व्रत आचार्य दिल्ली एवं मुख्य वक्ता आचार्य संजय याज्ञिक जी मेरठ से पदार्पण किये वहीं भाषण प्रतियोगिता के जज के रूप में अतिथि श्री किशन लाल शास्त्री एवं दिलीप भाई वेलानी जी रहे।

इस कार्यक्रम के विशेष सहयोगी के रूप में श्री रमेश आर्य, जयाबेन पटेल, श्रीलता शास्त्री एवं श्रीमती सुनीता शास्त्री जी रही। उक्त समय पर डॉक्टर सौरव सिंह एवम सुकृति आर्या ने भी आर्य वीर बच्चों के साथ विशेष कार्यक्रम की प्रस्तुति की इस प्रकार २६ जनवरी गणतंत्र दिवस के अवसर पर एक लघु नाटिका के साथ राष्ट्र को नमन करते हुए यह कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

विचार शक्ति का चमत्कार

(आत्मदर्शन-२)

प्रिय पाठकों सादर नमस्ते।

विगत चर्चा के अनुसार हमने पाया कि आत्मदर्शन का सीधा अर्थ है आत्म अवलोकन आत्म चिंतन या मनन। अपनी शक्तियों का, विचारों का बारिकी से निरीक्षण कि कहीं ये जाने अनजाने में विपरीत दिशा में तो नहीं जा रहे? एकाकी क्षणों में या वैसे भी हमारा निरंतर आत्म चिंतन से, हमारे विचारों के अनुरूप, दिमाग के कैमिकल्स में बदलाव आता रहता है, और वहीं से हमारे भविष्य की नींव तैयार हो जाती है, हमारे भाग्य व भविष्य का निर्माण हो जाता है। हमारा दिमाग प्रकृति से उन्ही तत्वों को आकर्षित करने लगता है जैसा उसमें कैमिकल तैयार होता है। यहाँ पर मैं सर्व स्वीकारिता के भाव का उल्लेख करना चाहूँगा जिससे हम बड़ी बड़ी मुश्किलों को भी गले लगाकर आसान बना देते हैं पहले हम अपने आप को स्वीकार करें, फिर दूसरों को स्वीकार करें तभी सामनेवाला हमें स्वीकार करेगा, अन्यथा वह हमारे औरों में आते ही हमसे छिटककर दूर हो जाएगा (जीवन में हम सदा) ही कुछ न कुछ प्राप्त करते रहना चाहते हैं। काफी चिंतन के बाद एक बहुत ही आसान तरीका सामने आया और वह है विपरित कर्म करना या अलगाव उत्पन्न करना। अलगाव बहुत ही शक्तिशाली साधन है जिसके द्वारा वस्तुओं का त्याग करते हुए उन्हें प्राप्त करने की क्षमता हमारे अंदर आ जाती है। अब इसे बारिकी से समझना बहुत जरूरी है। इस पर हम अगले लेख में विस्तार से चर्चा करेंगे फिलहाल यह ज्ञान ले कि कैसे निरंतर हमारे अंदर उठते विचारों का असर हमें जीवन में दिखायी देने लगता है, कैसे परमात्मा की न्याय व्यवस्था पल पल पर हमारे कर्मों का न्याय करती है और कैसे फल का आवेग हमें निरंतर कर्म करवाता है। अप्राप्त की प्राप्ति की रक्षा, प्राप्ति का उपभोग और फिर नये सिरे से प्राप्त करने में लग जाना। यह क्रम निरंतर चलता रहता है। हम हर पल, हरक्षण कुछ न कुछ प्राप्त करते रहना चाहते हैं। इसकी विधि के बारे में हम अगले अंक में चर्चा करेंगे। यह भी एक आत्म दर्शन का सशक्त हिस्सा है। बहुत बहुत धन्यवाद!

—राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त

उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी.



नित्य-आर्ष स्वाध्याय आत्मा का भोजन

पं. उम्मेद सिंह विशारद

मो. ९४११५१२०१९/९५५७६४१८००

स्वाध्यायात् मा प्रमदः-। स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में प्रमाद मतकर

जगत गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखते हैं।

स्वध्यायेत व्रतेहोमिस्यैविद्येने ज्ययसुतैः-।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तुनः । (मनुः)

अर्थात्: सकल विद्या पढ़ते पढ़ाते ब्रह्मचार्य सत्यभाषणादि नियम पालने अग्निहो यदि होम सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सत्य विद्याओ का (स्वाध्याय) दान देने वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान विद्या का ग्रहण करने ब्रह्म देव पितृवैश्यदेव और अतिथियों के सेवन रूप पन्चमहायज्ञ और अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्याविनादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर बनता है। इन साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।

स्वाध्याय क्यों और कैसे

जिस आर्ष ज्ञान के द्वारा मनुष्य को सर्वोत्तम मुखी प्रगति और सब प्रकार की सुख शान्ति प्राप्त हो वह ज्ञान व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए। वह ज्ञान स्वाध्याय और सत्संग द्वारा प्राप्त होता है। आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय से मनुष्य का मानसिक उच्च संस्कार होजाता है। उसकी वृद्धि सृष्टिक्रमानुसार ज्ञान विज्ञान में प्रखर हो उठती है स्वाध्याय के बिना उच्च ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, जो स्कूल में प्राप्त नहीं हो सकता है। जो स्वयं नित्य नियमपूर्वक आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है उसे ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

नित्य स्वाध्याय की जिज्ञासा जगाइये और अपना ज्ञान भण्डार भरिये ।

नित स्वाध्याय की जिज्ञासा मानव जीवन के विकास का बहुत बड़ा आधार है। जो जिज्ञासु है और ज्ञानने को उत्सुक है वही ज्ञान भी प्राप्त करेगा। जिज्ञासा में स्वयं अपनी एक ज्ञान शक्ति होती है। ज्यों ज्यों जिज्ञासा गहरी होती रहती है, ज्ञान भी बढ़ता रहता है। मनुष्य अपनी जिज्ञासा वृत्ति से ही दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं ईश्वर भक्त अन्वेषक बनता है।

प्रत्येक समाधान स्वाध्याय से

जिज्ञासा और प्रत्येक अज्ञान के निर्माण का माध्यम स्वाध्याय से होता है। आर्ष शास्त्रों का स्वाध्याय ही उपयुक्त माना गया है। और स्वाध्याय को मानव के धर्म कृत्यों में सम्मिलित किया गया है और निरन्तर तत्परता से दैनिक दिनचर्या में सम्मिलित किया गया है। स्वाध्याय को तो दिन रात कभी भी करने की छूट देकर शास्त्रकारों ने उसका महत्व स्वीकार किया है। स्पष्ट है स्वाध्याय द्वारा मनुष्य का

इतना हित हो सकता है, जितना कि धनधान्य सहित धरती से भी सम्भव नहीं है।

स्वाध्याय की उपेक्षा न करें ।

आज मनुष्य जितनी प्रगति कर सका है उसके महत्त्वपूर्ण आधारों में से एक बौद्धिक सम्प्रदा आधार स्वाध्याय ही हैं ज्ञान हीन मनुष्य आजीवन पशुओं की तरह ही अनगढ़ संशययुक्त जीवन जीता है। ज्ञान की जन्मदात्री मनुष्य की विवेक बुद्धि को ही माना गया है। मनुष्य को आध्यात्मिक व वैज्ञानिक शक्ति प्राप्त करने के लिये नित्य स्वाध्याय आवश्यक हैं, ज्ञान का आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का यथार्थ अर्थ विचारों को उपयुक्त दिशा में विकसित करना ही है।

वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थों का चयन नियमित स्वाध्याय में करें।

वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थों का चयन इसलिये आवश्यक है कि उनका ज्ञान सृष्टिक्रमानुसार वैज्ञानिक, व सत्य के आधार पर होता है। नित्य स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है स्वाध्याय एक प्रकार की साधना है जो अपने साधक को सिद्धी के द्वार तक पहुँचाती है। स्वाध्याय के अभाव में पढ़ी हुई विद्या भी विस्तृत हो जाती है प्रतिदिन स्वाध्याय करने वाले अपने ज्ञान कोष में बूँद में बूँद-बूँग इकट्ठा करके उसे अक्षम बना लिया करते हैं। वर्तमान में साहित्य अर्थात् अनार्ष साहित्य के द्वारा मानव जगत को भ्रमित किया जाता रहा है, जिसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है। जितना पथ भ्रष्ट मानव जगत को अनार्ष ज्ञान की पुस्तके कर रही है उतना ही उसका आध्यात्मिक जीवन भी नष्ट हो रहा है इसलिये वेदानुकूल ग्रन्थों का ही स्वाध्याय नित्य करें।

सम्पूर्ण प्रगति का मूल आधार सत्य ज्ञान

सत्य का कहना बहुत कठिन है, सुनना उससे भी कठिन है, और सत्य सुन कर उस पर चलना और भी कठिन है परन्तु सत्य से बढ़कर कोई हितकारी पदार्थ नहीं है। सत्य ज्ञान सत ग्रन्थों के स्वाध्याय से मिलता है ईश्वर के कार्य ऋत सत्य है। और ऋत सत्य का ज्ञान वेद और वेदानुकूल शास्त्रों के स्वाध्याय से प्राप्त होता है। सत्य ज्ञान व्यक्ति को शीलवान शिष्ट और विनम्र बनाता है। और इन गुणों के परिणाम से समाज में सम्मान और सहयोग मिलता है। ज्ञान की महिमा अपार है। ज्ञान की कृपा से सामान्य व्यक्ति भी महापुरुष बन जाता है। संसार में जितने भी महापुरुष और प्रतिभा प्रधान हुए हैं, वह सत्य ज्ञान के आधार पर ही उच्च स्तर पर पहुँचे हैं। आत्मा का क्षेत्र विशुद्ध रूप से ज्ञान का क्षेत्र है। और आत्मा का क्षेत्र उसके लिये ही खुलता है। उसके गुण कर्म स्वभाव का क्षेत्र उसके सत्य ज्ञान के आधार पर होता है।

स्वाध्याय का मूल प्रयोजन आत्मा का शिक्षण

शास्त्रों की तीन प्रमुख आज्ञाएँ हैं। सत्यम वद-धर्म चर-तथा स्वाध्याय मा प्रमदः अर्थात् सत्य बोले, धर्माचरण करे और स्वाध्याय मे प्रमाद न करे। इस निर्धारण के अनुसार सत्य और धर्म के ही समकक्ष स्वाध्याय को ही प्रमुखता दी गई है, सत्य और धर्म के बारे में सभी जानते हैं, भले ही उनका परिपालन न करते हों। किन्तु स्वाध्याय के सम्बन्ध में बहुत कम लोग समझते हैं कि ऋत सत्य-सत्य-धर्म का आधार ज्ञान प्राप्ति का साधन केवल स्वाध्याय और सत्य सत्संग होता है।

स्वाध्यायाद यागमासीत योगात् स्वाध्यायमामानेत ।**स्वाध्याय-योग-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते-। (योगशास्त्र)**

अर्थात्: स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग स्वाध्याय का अभ्यास करें।

स्वाध्याय की सम्यक्क्ति से परमात्मा का साक्षात्कार अर्थात् आभास होता है।

ज्ञानवानुदितानन्दो कवचित्परिमर्नति (योग व.)

अर्थात्: ज्ञानी ही परम आनन्द प्राप्त करता है वही पार होता है।

यथा यथा हि पुरुष शास्त्रं समाधि गच्छति ।**तथा तथा विज्ञानाति विज्ञान चास्य रोचते-॥ मनु ॥**

अर्थात्: जैसे मुनय शास्त्रों का स्वाध्याय करता है, वैसे-वैसे उसकी ज्ञान क्षमता बढ़ती जाती है। जैसे सूर्य के उदय होने से कमल रत्न विकसित है और स्वाध्याय से बुद्धि का विकास होता है।

ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं बंधाय चेष्ट्यते- ।**ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानादविद्यते परम-॥ (यो.व.)**

अर्थात्: ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है, और विपरीत ज्ञान से ही बन्धन बांधते हैं, इस संसार में जो कुछ है, ज्ञानात्मक ही हैं। ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है।

निवेदन

स्वाध्याय और सत्संग का विषय प्राचीन काल से ही आत्म विश्लेषण और आत्म निर्माण ही हुआ करता था, गुरुजन् इसी विषय की दीक्षा दिया करते थे- मानव जीवन को सुखी सुमुन्नत और संस्कारी बनाने के लिये सदग्रन्थों का स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। स्वाध्याय मानव जीवन का सच्चा सुहृद एवं आत्मा का भोजन है। हमें आलस्य प्रमाद छोड़कर प्रातः सांय आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय करने की नित्य आदत डालनी होगी। और जो मानव अपने दैनिक दिनचर्या में नित्य स्वाध्याय करते हैं वह साधुवाद के पात्र हैं।

वैदिक प्रचारक

गढ़ निवास मोहकमपुर देहरादून, उत्तराखण्ड

मो. ९४११५१२०१९/९५५७६४१८००

महर्षि दयानन्द स्मारक, कर्णवास**जनपद-बुलन्दशहर**

स्वामी दयानन्द जी महाराज द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में कर्णवास का विशेष स्थान है। पश्चिमी भारत के अपने समय के सबसे बड़े विद्वान माने जाने वाले पं. हीराबल्लभ जी के साथ कर्णवास में ही शास्त्रार्थ हुआ जिसमें शर्त रखी गयी थी कि यदि वेद में मूर्ति पूजा सिद्ध होती है तो स्वामी दयानन्द ठाकुर जी को भोग लगायेंगे। अन्यथा पं. हीराबल्लभ जी ठाकुर जी को गंगा में प्रवाहित कर देंगे। पं. हीराबल्लभ अपने साथ ठाकुर जी का डोला लेकर आये। शास्त्रार्थ के अन्तिम दिन पंडित जी ने स्वीकार किया कि वेदों में मूर्ति पूजा का कोई प्रावधान नहीं है। स्वामी दयानन्द जी का कथन सत्य है और अपने साथ लाये हुये ठाकुर जी के डोला को गंगा में प्रवाहित कर दिया। जनता स्वामी दयानन्द जी की भक्त हो गयी और हजारों ठाकुर जी गंगा में प्रवाहित कर दिये गये। गाँव-गाँव जाकर क्षत्रियों को यज्ञोपवीत प्रदान किये गये। कर्णवास में ही राव कर्णसिंह द्वारा स्वामी जी पर तलवार से वार करने का प्रयास भी किया गया।

इस महत्वपूर्ण स्थान कर्णवास में स्वामी दयानन्द जी का दस बार आगमन हुआ। जिस स्थान पर बैठकर स्वामी जी प्रवचन करते थे उस स्थान पर गंगा के सुरम्य तट पर महर्षि दयानन्द जी का सुन्दर स्मारक बहुत समय से स्थापित है। आर्यों के इस तीर्थ स्थल पर दिनांक २७.०३.२०१९ से ०२.०४.२०१९ तक एक साधना एवं स्वाध्याय शिविर का आयोजन किया जा रहा है। इच्छुक सज्जन भाग लेना चाहें तो ५०० रुपया शिविर शुल्क खाता संख्या-१११०५७०७३२८ आई. एफ. एस. सी. कोड-एसबीआईएन. ००२३३८ स्टेट बैंक डिबाई, बुलन्दशहर में जमा कराकर स्थान सुरक्षित कर लें। शिविर में प्रशिक्षण योग प्रचारक पूज्य स्वामी केवलानन्द जी वानप्रस्थ आश्रम, हरिद्वार व उनके सहयोगी महात्मा अमृतमुनि, महात्मा प्रेममुनि, हरिद्वार, योग आचार्य गिरिधारी लाल आर्य, अलीगढ़ द्वारा दिया जायेगा।

शिविर पुरुषों के लिये पूर्णकालिक शिविर है। शिविर काल में आश्रम से बाहर जाना अनुमन्य नहीं है। शिविरार्थी डायरी, पेंसिल, टार्च दैनिक आवश्यकता की वस्तुयें हल्का बिस्तर साथ लायें।

मार्ग-रेल द्वारा, अलीगढ़ से राजघाट पहुँचकर कर्णवास के लिये टैम्पो मिलते हैं, दुरी ३ किमी। बस से डिबाई पहुँचकर कर्णवास के लिये टैम्पो मिलते हैं।

(नरेन्द देव वानप्रस्थ)

ओङ्कारमय जगत्

प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार

ईश्वर के सर्वोत्तम ओ३म् नाम पर सैद्धान्तिक प्रमाणों के साथ ओङ्कार-महिमा का भी वर्णन यहीं पर किया जा रहा है। किसी गीतकार ने ठीक ही कहा है-

अक्षर ओम् अनादि अपार, जगत् पिता सब के आधार ।

सब से प्राचीन ग्रन्थों में वेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः वेद, दर्शन, उपनिषद्, पुराण, बौद्ध एवं जैन मत, बाईबल, कुर्आन, अक्षर-विज्ञान, आंग्लभाषा, रेखागणित और पारसी मतावलम्बी के सिद्धान्तों का उल्लेख क्रमशः इस प्रकार है-

१. ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं-स्मर । (यजु. ४०/१५)
२. ओ३म् खं ब्रह्मा । (यजु. ४०/१७)।
३. मनो जूर्तिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्विरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म् प्रतिष्ठ ॥ (यजु. २/१३)
४. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ (ऋ. १।१६४।३९)
५. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ (ऋ. १।३।७)
६. परमे व्योमन् । (अथर्व ५।१।७।६ अ. ६।१३।१, अ. ७।५।३)
७. तस्य वाचकः प्रणवः । (योगदर्शन) उस वाच्य का वाचक प्रणव अर्थात् ओ३म् है।
८. सारा माण्डूक्योपनिषद्-ओ३म् की व्याख्या में लिखा गया है । व्याख्या के लिए देखो पं. श्री. गुरुदत्त विद्यार्थी की ग्रन्थावली ।
९. तस्माद् यज्ञात् सिद्ध्यर्थं मन्त्रमोङ्कारनामकम् । इतः प्रजापतिं मामकं मानभज्जनम् ॥ (शिवपुराण १०।१५)

ज्ञानी सिद्ध्यर्थ ओङ्कार नाम जपा करे । इससे अभिमान का नाश होगा।

१०. ओङ्काररूपो भगवान् यो वेदादिप्रतिष्ठितः । यं सदा मुनयो देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि । ओङ्काररूपो भगवानुक्तस्तु गण-नायकः । यथा सर्वेषु कर्मसु पूज्यते सो विनायकः ॥ (गणेशपुराण)

अर्थ- भगवान् ओङ्कार रूप से वेदादि में प्रतिष्ठित हैं । इन्द्र देव तथा मुनि सब अपने हृदय में इस ओङ्कार वाच्य का स्मरण करते हैं । ओङ्कार रूप भगवान् सब का नेता है इसलिए गणनायक कहाता है । सभी कार्यों के प्रारम्भ में यह पूजा जाता है क्योंकि यह सत्य पथप्रदर्शक अर्थात् विनायक है।

११. ओम् मनी पदमो होम् । हृदय कमल में ओम् रूप मणि है । (बौद्धधर्म)

१२. ओ३म् श्री वीतरागाय नमः ओ३म् नमः सिद्धेभ्यः । पञ्चा-ध्यायी । ओ३म् नमोऽनेकान्ताय ॥ आप्तमीमांसा और परीक्षा-मुखा ओ३म् श्री वीतदोषाय नमः । ओ३म् अहं नमः; एनं मः ।

ओ३म् नमो अरिहन्ताणाम् । विविध । (जैन धर्म)

१३. AMEN-AMEN आमीन् “गीत” ८९/५२;७२/१९

यह ओम् का ही अपभ्रंश रूप है । (बाईबल)

१४. अलिफ, लाम, मीम्- ये तीनों अक्षर मिलकर “ओम्” हो जाता है । ‘अलम’ में ‘ल’ का लोप होकर ओ३म् रह जाता है ‘ल’ अक्षर का लोप अर्बी जुबान के कायदे से होता है । ‘कमरुद्दीन’ नाम का उच्चारण ‘कमरुद्दीन’ हो जाता है । सिवाय इसके एक बात और भी है कि कुर्आन् में इन ३ अक्षरों का अर्थ प्रकट नहीं किया गया है । इस्लाम के विद्वान् मनमाना अर्थ लगाते हैं जो ठीक तौर पर किसी को स्वीकृत नहीं है । इस का कारण यही है कि ‘अलम्’ ओम् शब्द का विकृत रूप है । अतः इसका सही अर्थ इस्लाम के विद्वानों को ज्ञात हो ही नहीं सकता है । इस सही अर्थ केवल वेदानुयायी ही जानते हैं और वह है अ+उ+म् । (कुर्आन्)

जितने भी पौराणिक देवता हैं पुराणों ने उनमें से एक को भी निर्दोष नहीं छोड़ा है । एक न एक दोष अवश्य लगाया है परन्तु ओङ्कार शब्द के वाच्य को सर्वथा निर्दोष छोड़ा है यह पुराणकर्ताओं ने बड़ी कृपा की है ।

अक्षर-विज्ञान अ+उ+म् में अक्षर व्यञ्जनों में व्यापक है जो व्यापक ईश्वर का प्रतीक है सब भाषाओं में पहले लिखा जाता है और अपना अस्तित्व सब में सदा एक सा रखता है । अतः यह ईश्वर का प्रतीक उ जीव का प्रतीक, म् प्रकृति का प्रतीक है । भाषा के रूप में ‘ओ३म्’ अव्यय है । जैसे ईश्वर सदैव एक सा रहता है ऐसे यह शब्द सब रूपों में एक सा रहता है । (अक्षर-विज्ञान)

अंग्रेजी भाषा में ईश्वर के गुणों को ‘ओ३म्’ नाम के साथ प्रकट किया है । यथा-

Omnipresent - ओमनी प्रेजेन्ट-सर्वव्यापक ।

Omnipresence - ओमनी प्रेजेन्स-सर्वव्यापकत्व ।

Omnipresent - ओमनी प्रेजेन्ट-सर्वशक्तिमान ।

Omnipresence - ओमनी प्रेजेन्स-सर्वशक्तिमत्त्व ।

Omnipresent - ओमनी शियेन्ट-सर्वान्तर्यामी ।

Omnipresence - ओमनी शियेन्स-सर्वान्तर्यामिन् ।

Omega - ग्रीक भाषा के प्रथम अक्षर ‘अ’ का नाम ।

Omnipresent - ओमनी प्रेजेन्ट-सर्वव्यापक ।

Omnipresence - ओमनी प्रेजेन्स-सर्वव्यापकत्व ।

Omen - ओमेन-शुभ चिह्न ।

Omnific - ओमनीफिक-विश्वकर्मा । (आंग्लभाषा)

स्वस्तिका :- 卐 यह रेखागणित में स्वस्तिक ओ३म् का प्रतीक है । (रेखागणित)

जन्दावस्ता में ‘ओ३म्’ को ‘होर्मज्दा’ कहा गया है, यह ओम् का अपभ्रंश है । होर्मज्दा का अर्थ ईश्वर है । (पारसी मतावलम्बी)

ओ३म्-इस का धातु- “अव रक्षणे” है जिसके उन्नीस अर्थ हैं । यथा-

१. रक्षण- वह सर्वरक्षक है ।

२. गति- ज्ञान, गमन और प्राप्ति वाला है।
३. कान्ति- जीवों की इच्छा पूर्ति करने से कान्तिमान् है।
४. प्राप्ति- आनन्द स्वरूप होने से सब के लिए प्राप्तव्य है।
५. तृप्ति- सब जीवों के लिए हर्षोत्पादक है।
६. अवगम- मंगल स्वरूप मोक्ष का दाता है।
७. प्रवेश- सूक्ष्मता होने से सब की अन्तरात्मा है।
श्रवण- गुप्त प्रकट शब्दों का श्रावक है।
८. स्वाम्यर्थ- स्वयं सिद्ध स्वामी है।
१०. याचना- सब की याचना का स्थान है।
११. क्रिया- ज्ञानपूर्वक क्रिया का दाता है।
१२. इच्छा- मनोवाञ्छित इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है।
१३. दीप्ति- सब को ज्ञान से प्रकाशित करने वाला है।
१४. अवाप्ति- शत्रुओं से रक्षा करने वाला है।
१५. आलिङ्गन- सदा सभी का आलिङ्गन करने वाला है।
१६. हिंसा- दुष्टों का संहारक है।
१७. दान- दान की प्रवृत्ति को प्रेरित करने वाला है।
१८. भाग- सभी प्राणियों को यथोचित भाग देने वाला है।
१९. वृद्धि- समस्त जड़ चेतन जगत् की वृद्धि करने वाला है।

महर्षि दयानन्द की मान्यता है कि ईश्वर का सर्वोत्तम नाम “ओ३म्” है। नासदीयसूक्त में “तद् एकम्” पद से जिस एकाक्षर ब्रह्म का संकेत किया गया है। वह एकेश्वरवाद का द्योतक है। अन्यत्र उसे “एकं सत्” पद से भी अभिहित किया गया है।

एकं सत् पद से अभिहित जिसे विप्र मेधावी, ऋषिगण, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, ब्रह्मा, विष्णु, मनु, प्रजापति, प्राण, हिरण्यगर्भ, रुद्र आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं। वही एकमात्र जगदीश्वर है, जिसका मुख्य नाम ओ३म् है।

अकार का सम्बन्ध यजुर्वेद से है, यजु. का कर्म से और कर्म का ऐहलौकिक अभ्युदय से अतः अकारैक-माझिक ओ३म् रूप एकाक्षर ब्रह्म की उपासना ध्यान करने वाला लौकिक अभ्युदय का भागी होता है। वह मृत्युपर्यन्त पुनः मर्त्यलोक में जन्म लेता है। उकार का सम्बन्ध सामवेद से है। साम का सम्बन्ध उपासना और उपासना का अन्तरिक्ष से। अतः अ तथा उ रूप द्विमात्रिक ओ३म् रूप द्व्यक्षर ब्रह्म की उपासना ध्यान के करने वाला सोमलोक, चन्द्रलोक (पितृयान को प्राप्त होता है और यावत्पुण्य चन्द्रलोक में आनन्द का उपभोग कर पुण्य के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में उत्तम योनि में पैदा होता है। म् का सम्बन्ध ऋक् का ज्ञान से और ज्ञान का मोक्ष से। अतः अ+उ+म् रूप त्रिमात्रिक ओ३म् रूप त्र्यक्षर ब्रह्म की उपासना, ध्यान करने वाला सूर्यलोक (देवयान) को प्राप्त करता है। स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तन्नैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते, स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥

निष्कर्ष यह है कि वह नामोपासक यदि एक मात्रा का ध्यान करता है, नाम को केवल वाणी द्वारा जपता है तो वह भक्त उसी वाचिक स्मरण से जागृत होकर शीघ्र ही परजन्म लेता है। उस उपासक को स्तुतियां मर्त्यलोक

में ले जाती हैं। भगवान् के भजन से ऐसे भक्त को मनुष्य जन्म पाकर तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त होकर नाम स्मरण की महिमा को अनुभव कर लेता है।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते स सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥

यदि कोई भक्त द्वि मात्रा से परमात्मा के नाम का ध्यान करे, वाचिक और मानसिक दोनों मात्राओं से नाम का जप करे तो वह उपासक मन में लीन होने लगता है, उसका मन स्थिर हो जाता है। ऐसी एकाग्रता वह आकाशस्थ सोमलोक को यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा ले जाया जाता है। वह कर्मकाण्डी सूक्ष्मलोक में वास करता है और सोमलोक में नाम जप की महिमा के, ऐश्वर्य को अनुभव करके पुनः मनुष्य जन्म में लौट आता है।

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येते नैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत, स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते, एवंह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्। स एतस्माज्जीवधनापरात्परं पुतिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः॥ (प्रश्नोपनिषद् ३/५)

पुनः जो इस नाम को त्रिमात्रा से, मन, वचन, कर्म के द्वारा ओ३म् इस अक्षर से परब्रह्म पुरुष का चिन्तन करे तो वह उपासक प्रशाशस्वरूप सूर्यलोक को प्राप्त होता है। उसका आत्मा आत्मिक प्रकाश से सूर्य में मग्न हो जाता है। जैसे सांप कैंचुली से छूट जाता है, इसी प्रकार निश्चय से वह उपासक पापों से मुक्त हो जाता है। उस अवस्था में वह साम मन्त्रों द्वारा स्तुति से ब्रह्मलोक को ले जाया जाता है। तब वह इस मर्त्यलोक से ऊपर, पर से परमोत्तम ब्रह्माण्डति पुरुष को देखता है। ऐसा ध्यानी उपासक परमेश्वर के परस्वरूप-वाचक के वाच्य को प्राप्त करता है।

यही अक्षर ब्रह्म है, यही वह परब्रह्म है जो उसे जानता है वह अभीष्ट को प्राप्त करता है। वह अणु से भी सूक्ष्म और महत् से भी महान् है। जो उस शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि से रहित अनादि और अनन्त जानकर उपासना करता है वह मृत्यु के दुःख से छूट जाता है।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वम् ओङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्याङ्कार एव । (माण्डूक्योपनिषद्-१)।

यह अक्षर ब्रह्म ही ओम् पद वाच्य है, यह भूत-भौतिक प्रपञ्च उसी अक्षर ओ३म् का विस्तार व्याख्यान है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में स्थिर जगत् ओङ्कार ही है जो कुछ त्रिकालातीत है व ओंकार ही है।

‘तत् एकम् यही परात्पर है। अतः ऋषि कहते हैं-

“तस्माद्वाच्य परः किञ्चनास” - उस से उत्कृष्ट कोई तत्त्व नहीं था। इस अध्यक्षर और अधिमात्र ओंकार को ऋषि ने सूक्त में नहीं कहा है। ऐसा ‘परम् व्योम’ - परम+वि+ओ३म् शब्द से निर्दिष्ट किया है। तुरीय ब्रह्म को ‘परमे व्योमनि’ परम व्योम में स्थित बताया गया है। (अमात्रश्चतुर्थो) वह अमात्र है मात्राओं से पर है।

यजुर्वेद में कहा गया है कि ओ३म् आकाशवत् व्यापक होने से “खम्” और सब से बड़ा होने से ब्रह्म है। इसी ओम् की उपासना का स्मरण करना चाहिए। ओ३म् (क्रतो) स्मर । (यजुः. ४०।१५)

इस सन्दर्भ में ऋग्वेद के अन्तर्गत “ओमासः” पद द्रष्टव्य है जो सन्धि-विच्छेद होने पर ‘ओम्+आसः’ बन जाता है। इस प्रकार “ओमासः” का अर्थ ब्रह्म के पास बैठने वाला अथवा ब्रह्मज्ञानी हुआ। (ऋक्-१।३।७)

अकारं चाप्युकारं च मकारम् च प्रजापतिः ।

वेदत्रयान्निदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ (मनु. २।७६)

मनुस्मृति में अ, उ, म मिलकर बने ओ३म् का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि प्रजापति ने जिस प्रकार दूध से मक्खन निकाला जाता है, उसी प्रकार ओ३म् शब्द के अ, उ और म इन तीन अक्षरों को और भूः, स्वः इन तीन अक्षरों को ऋक्, यजुः, साम रूप (तीनों वेदों के) दूध से मक्खन के रूप में निकाला है।

विश्व का सब से प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य वेद है और उसमें अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवों की स्तुति की गई है। इसी आधार पर वेद में बहुदेवतावाद या अनेकेश्वरवाद का अन्वेषण अनेक विद्वान् करते रहे हैं। महर्षि दयानन्द इस स्थापन से पूर्णतः असहमत हैं, वेदों में अनेक ईश्वर मानने वालों को वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए लिखते हैं कि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिसमें अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि- ‘ईश्वर एक है।’

स्वामी दयानन्द की मान्यता है कि देवता अनेक हैं परन्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर तो एक ही है। उनका कहना है कि देवता दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहलाते हैं। जैसे कि ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि जिसमें देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसलिए कहलाता है कि वह सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है। “त्रयस्त्रिंशता” यजुः. १४।३, इसकी व्याख्या शतपथ में की गई है। तैत्तिरीय अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से आठ वसु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह “रुद्र” इसलिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रुलाते हैं। संवत्सर ये बारह माह आदित्य इसलिए कहलाते हैं कि ये सब की आयु ले जाते हैं। विद्युत् बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि वह परमेश्वर्य का हेतु है। यम को “प्रजापति” कहने का कारण है कि जिससे वायु, वृष्टि, औषधि की शुद्धि विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तैत्तिरीय पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहलाते हैं। इनका स्वामी सब से बड़ा होने से चौतीसवां उपास्य देव ईश्वर शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बाहर आदित्य, इन्द्र और प्रजापति इन तैत्तिरीय देवों का अधिपति महादेव परमेश्वर है।

ये तैत्तिरीय देव ईश्वर नहीं हैं विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होने से पञ्चभूत चन्द्र-सूर्य, नक्षत्र आग आदि देव कहे जाते हैं।

इन्द्र, मित्र, वरुण आदि शब्दों का प्रयोग विभिन्न गुणों के कारण होने से एक ही परमेश्वर के लिए उपयुक्त हुआ है। इसका प्रतिपादन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में किया गया है। स्वयं वेद इसका प्रमाण है। (ऋक्-१।१६४।४६)

इस सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि वेद में बहुदेवतावाद या

सर्वेश्वरवाद का प्रतिपादन है तो यह सर्वथा वैदिक भावना के विपरीत होगा। सम्पूर्ण वेद में एकेश्वरवाद का प्रबल प्रतिपादन प्राप्त होता है।

त्वमग्र इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुगुगयो नमस्यः।

त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्धय॥

(ऋक्- २।१।३)

इस मन्त्र में अग्नि को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि-हे अग्निदेव ! तू ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र, पूषा, द्रविणोदा, सविता, भग है।

स्पष्ट ही यहाँ ये सब नाम प्रधानरूप से अग्नि पद वाच्य सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के हैं तथा उसके अनेक गुणों को सूचित करते हैं। अथर्ववेद ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि परमेश्वर एक है, एक होकर सब को व्यापता है- सर्वव्यापक है, वह एक ही है। उसे दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां, आठवां, नौवां, दसवां नहीं कहा जा सकता। वह एक ही है। (अथर्ववेद १३।४।१६-१९, २१)

यजुर्वेद ३२।१ में कहा है कि वह एक ब्रह्म अग्नि, आदित्य, वायु और चन्द्रमा है। वही ब्रह्म, आपः और प्रजापति के नामों से पुकारा जाता है।

तवेवाग्निस्तवादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्मा ता-आपः स प्रजापतिः ॥

सामवेद में भी परमेश्वर को एकमात्र पूज्य कहा है-

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरनिर्धिनानाम् ।

स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्तनीरु वावृते एक इत् ॥

(साम. ४।२।९३)

हे मनुष्यों ! तुम सब सरल भाव और आत्म बल के साथ बल के साथ प्रभु की ओर उसका भजन करने के लिए आओ, जो समस्त मनुष्यों में एक ही अतिथि सम पूजनीय है। वह सनातन है और प्राणियों के अन्दर भी व्याप्त हो रहा है। ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि उसी की ओर जाते हैं। वह निश्चय से एक ही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि परमसत्ता ईश्वर तो एक ही है। उसी परम सत्ता को पृथक्-पृथक् गुणों के कारण पृथक् नामों से स्मरण किया गया है।

अग्नि, वायु, आदित्य, इन्द्र, वरुण आदि जितने भी देवों के नाम हैं वे सब परमात्मा के वाचन हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि सत् रूप प्रभु को ज्ञानी अनेक प्रकार से बोलते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, सत्, यम, मातरिश्वा आदि सब उसी के नाम हैं।

यह सारा जग उसमें समाविष्ट है। वह एक ही है। सब तेजस्वी पदार्थ उसमें केवल एक बनकर रहते हैं।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥ (यजु. ३२।२)

वह गतिमान् भी है और स्थिर भी। (तदेजति जन्नैजति. यजु. ४०।५) उस तेजस्वी विद्युत् रूप से सब गति उत्पन्न हुई है परन्तु उसको ऊपर, नीचे या मध्य से सब प्रकार से कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता है।

वह अद्वितीय, ईश्वर स्थिर होते हुए भी मन से भी बढ़कर गतिमान् है। वेगवान् है। अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनदेवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।

(यज्ञ ४०।४)

उस ईश्वर को इन्द्रियां नहीं प्राप्त कर सकतीं अर्थात् इन्द्रियों से यह जाना नहीं जा सकता। वह दूसरे दौड़ने वालों को भी लांघ जाता है। इसी में रहने वाला मातरिश्वा जीवा। अपने कर्मों को धारण करता है। इसी ईश्वर के एकमात्र जगत् का आदिस्त्रष्टा होने का प्रमाण ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में मिलता है। जहाँ कहा गया है कि (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे.) तेजस्वी पदार्थों को अपने गर्भ-उदर में धारण करने वाला परमात्मा सृष्टि के पूर्व था। वह उत्पन्न हुई सृष्टि का एक ही स्वामी था जिसने भू और द्युलोक को धारण किया है।

वही एक आत्मा को देने वाला, बल का देने वाला है, जिसकी छाया अमृत अच्छाया मृत्यु अच्छाया मृत्यु है। इस आनन्दमय प्रभु की पूजा करनी चाहिए।

(ऋक्-१०।१२।२)

उस एक के लिए अथर्ववेद में आया है कि वह हमारा पिता है, रक्षक है, जनिता-उत्पादक है, प्रेरक और बन्ध है, वह सब भुवनों और स्थानों को जानता है। वह सब देवों का नामधा- नाम धारण करने वाला ईश्वर है। उसी के विषय में सब प्रश्न पूछे जाते हैं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋग्वेद १०।१२।३)

वह ईश्वर ही प्राण धारण करने वाले, हलचल करने वाले जगत् का एक ही सम्राट् है। अपनी महान् शक्ति के कारण जो द्विपाद और चतुष्पाद हैं उन दोनों का भी वह एक ही स्वामी है।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥

ऋ. १।८९।१०

अन्यत्र भी उस परमपिता परमेश्वर को अदिति कहा गया है तथा उसे ही द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता-पिता, विश्वेदेवा पञ्चजन माना गया है तथा यह भी कहा गया है कि वह सब कुछ है। वह अदिति ही है तथा जो होगा, वह भी अदिति है।

अखिल भारतीय गुरुकुल सम्मेलन

वैदिक मिशन मुंबई इस वर्ष अपना वार्षिक उत्सव २३/२४ मार्च २०१९ को डॉ. सोमदेव शास्त्री की अध्यक्षता में आर्य समाज सांताक्रुज के परिसर में मनाने जा रहे हैं। जिसका विषय होगा- “भारत वर्ष के गुरुकुलों की स्थिति व उनके सुधार के प्रयास”। इस कार्यक्रम में दिल्ली से स्वामी आर्यवेश जी, स्वामी प्रणवानंद जी सरस्वती आदि विद्वत्जन उपस्थित होंगे। आप सभी से प्रार्थना है कि इस कार्यक्रम में आकर इस सम्मेलन की शोभा बढ़ाएं।

धन्यवाद।

डा. सोमदेव शास्त्री
अध्यक्ष-वैदिक मिशन मुम्बई
मो.: ९८६९६६८१३०

संदीप आर्य
मंत्री- वैदिक मिशन मुम्बई
मो.: ९९६९०३७८३७

आर्य समाज सान्ताक्रुज का ७५ वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न

शुक्रवार दि. २५-१-२०१९ से रविवार २७ जनवरी २०१९ तक आर्य समाज सान्ताक्रुज का ७५ वाँ वार्षिकोत्सव हीरक जयन्ती वर्ष बड़े हर्षोल्लास के साथ समाज के विशाल सभागृह में मनाया गया इस अवसर पर ऋग्वेद के मन्त्रोच्चारण के यज्ञ प्रातः ८ से १० बजे तक आयोजित किया गया। इस यज्ञ के ब्रह्मा एवं वक्ता श्री संजय याज्ञिक (मेरठ) थे एवं वेदपाठी पं. नामदेव आर्य, पं. विनोदकुमार शास्त्री, पं. नरेन्द्र शास्त्री, पं. प्रभारंजन पाठक एवं पं. भूपेन्द्र थे।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर वैदिक पुस्तक मेला विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा जिसमें २५% छूट का प्रावधान था।

शुक्रवार दि. २५ जनवरी २०१९ को मध्याह्न ३ से ६.३० बजे तक महिला सम्मेलन का आयोजन श्रीमती सरोजिनी गोयल की अध्यक्षता में हुआ। संयोजिका श्रीमती सुदक्षिणा शास्त्री ने इस कार्यक्रम का सफल संचालन किया अनेक समाज की प्रतिनिधि महिलाओं ने महिला सम्मेलन में अपने अपने विचार व्यक्त किये। कुछ बहनों ने भजनों की प्रस्तुति की। विशेष आमंत्रित विद्वान स्वामी देवव्रत जी (दिल्ली) ने २३ से २५ जनवरी २०१९ तक ध्यान योग शिबिर का सफल संचालन किया। इस ध्यान योग शिबिर से अनेकानेक लोगों ने लाभ लिया। बिजनौर उ.प. से पधारे हुए भजनोपदेशक श्री योगेश दत्त आर्य के सुमधुर भजन होते रहे।

शनिवार २६ जनवरी २०१९ को गणतन्त्र दिवस पर ८ बजे ध्वजारोहण हुआ। तत्पश्चात् सभी यज्ञ में सम्मिलित हुए। मध्याह्न २ से ५ बजे तक आर्य वीर दल मुंबई द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि स्वामी देवव्रत जी (दिल्ली) थे। सभी आर्य वीरो एवं वीरांगणाओं ने सुन्दर प्रस्तुति करण किया। आदरणीय श्री संजय याज्ञिक एवं स्वामी जी के अद्भुत उद्बोधन से सभी गदगद हो उठे एवं सभी ने तालियों बजाकर स्वागत किया।

रविवार दि. २७ जनवरी २०१९ को प्रातः ८ से ९.३० तक यज्ञ की पूर्णाहुति हुई, तत्पश्चात् सभी ने प्रातःराश किया तदुपरान्त भजनोपदेशक श्री योगेश कुमार आर्य के सुन्दर सुमधुर भजन हुए। डॉ. सोमदेव शास्त्री, श्री संजय याज्ञिक एवं स्वामी देवव्रत जी के प्रेरणाप्रद एवं सार गर्भित प्रवचनों ने श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। श्री दीपक पटेल प्रधान आर्य समाज सान्ताक्रुज एवं श्री लालचन्द आर्य प्रधान आर्य समाज सान्ताक्रुज टस्टू ने आर्य समाज सान्ताक्रुज की ओर से समस्त आगन्तुक विद्वानों एवं अतिथियों को शाल एवं श्रीफळ देकर सम्मानित किया। समस्त कार्यक्रम का संचालन श्री रमेश सिंह एवं श्री संदीप आर्य मन्त्री आर्य समाज सान्ताक्रुज श्रीमती शशि सिंह एवं श्री रमेश सिंह तथा अन्य सहयोगीयों द्वारा तीनों दिन लंगर की व्यवस्था सम्भाली गई अन्त में प्रधान जी ने विद्वान आगन्तुको श्रोताओं और कार्यकर्ताओं का धन्यवाद ज्ञापन किया। शान्तिपाठ एवं जय घोष हुआ। ऋषिलंगर के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।



भीतरी शत्रु : भ्रष्टाचार

प्रा. डॉ. चन्द्रशेखर लोखंडे

वस्तुतः आर्यसमाज वैदिक धर्म की स्थापना के लिए अभी शैशव-अवस्था में है। आर्यसमाज प्रेम, सेवा, संयम और सहनशीलता के साथ धर्म के क्षेत्र में उतरा है। प्रचार की तीव्रता को देखते हुए अभी वह अगण्य अवस्था में है। सवाल यह उठता है कि आर्यसमाज कौन-से शत्रु का चुनाव करे? वह हिंसा और आतंकवाद का सहारा तो ले नहीं सकता, न भय और लालच का आधार ले सकता है। संसार पर विजय पाने के लिए उसे ऐसे शत्रु का चुनाव करना पड़ेगा जो संसार को खाए जा रहा है। हमें समाज की बुराइयों को शत्रु बनाकर उनके खिलाफ लड़ना पड़ेगा। भ्रष्टाचार इनमें सबसे बड़ा शत्रु है जो सारे देश और समाज को खोखला किये जा रहा है। सम्प्रति देश के कोने-कोने में भ्रष्टाचार रूपी राक्षस का बोलबाला है। उसे खींचकर चौराहे पर लाना होगा। लोगों के सामने उसे बेनकाब करना पड़ेगा। आर्यसमाज यदि इस शत्रु के नाश का बीड़ा उठा ले तो सारे देश की आँखें आर्यसमाज की तरफ लग जाएँगी।

देश की आज़ादी से पहले हर कोई व्यक्ति समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए कार्य करता था। अनेकों ने अपने-आपको देश की आज़ादी के लिए न्यौछावर कर दिया। इन बलिदानियों के त्याग से ही हमको आज़ादी मिली। बाद में जो नेता इस देश की कुर्सी पर बैठे, उन्होंने त्याग-भावना से कार्य करना छोड़ दिया और भ्रष्टाचार का बोलबाला शुरू हो गया। स्वार्थ से प्रेरित नेता ही देश को खोखला बना रहे हैं। त्याग-भावना उनमें नहीं रही।

आज देश के ऊँचे पदों पर जो नेता आसीन हैं, उन्हीं के हाथ में देश की बागडोर है। यदि वे जनता की आँखों में धूल झाँककर देश और जनता को लूटते हैं, लोगों का पैसा खुद के ऐशो-आराम और सत्ता को प्राप्त करने के लिए लगाते हैं। तो आर्य समाज के नवयुवकों को एक प्रहरी की तरह जागरूक रहकर उनका भण्डाफोड़ करना होगा, उन्हें बेनकाब करना पड़ेगा।

आज की शोषित और शासित जनता भ्रष्टाचार के महाभयंकर राक्षस से पीड़ित है। उस राक्षस से जनता को छुड़ाना होगा। देश की जनता भ्रष्टाचार से आतंकित है। देश का ६० प्रतिशत पैसा तथाकथित नेता और नौकरशाहों रही तिजोरियों में बंद है। यदि यह धन देश के विकास के लिए लगाया जाय तो बड़ी-बड़ी योजनाएँ पूरी हो सकती हैं। यह पैसा नेता और नौकरशाहों के बैंक-खातों में बंद है। देश का विकास रुक गया है। देश की योजनाओं के लिए पैसा कहाँ से लाया जाय? उन्हें पूरा कैसे किया जाय? नेता कहते हैं जनता को नंगा किया जाय। हर पंचवार्षिक योजना के लिए जनता पर कर लादकर उसको नष्ट किया जाता है। उस पर टैक्सों का बोझ डाला जाता है। हर वर्ष के बजट में उसका चीर खींचा जाता है। विशेषतः मध्य-वर्गीय और निम्न-वर्गीय जनता आज महँगाई और करों के बोझ से पीड़ित है। उसकी तरफ

सहानुभूति से देखनेवाला भी कोई नहीं है।

दम गरीबी हटाने का भरते रहे,
जब कि खूद की गरीबी हटाते रहे;
खूब नेता ने जनता को नंगा किया,
निर्धनों को जो हरदम मिटाते रहे।
जिस हुकूमत में इन्साफ़ का खून हो,
हमको ऐसी हुकूमत नहीं चाहिए!

भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ रहे व्यक्ति और संस्था के प्रति जनता की सहानुभूति होना स्वाभाविक है। इस सहानुभूति को प्राप्त कर संस्था और देश को आगे लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य आर्यवीरों को करना चाहिए। युवकों में ऐसे हज़ारों नवयुवक प्रच्छन्न रूप से हैं जो भ्रष्टाचार-रूपी राक्षस से संघर्ष करना चाहते हैं। उन्हें सिर्फ प्लेटफॉर्म की आवश्यकता है, एक बैनर की आवश्यकता है। संगठन से शक्ति और उत्साह की प्राप्ति होती है। आर्य युवकों की सांथिक शक्ति का भरपूर उपयोग होना चाहिए। उस शक्ति का उपयोग सही दिशा में किया जाना चाहिए।

जवानी वह नहीं है जो किसी के काम ना आए,
रवानी वह नहीं कोई दिशा जो दे नहीं पाए।
कदम इन्सानियत के लड़खड़ाते देख तो 'शेखर'
नहीं वह जिन्दगी जो जिन्दगानी दे नहीं पाए ॥

भ्रष्टाचार देश को खोखला बना रहा है, देश की जड़ों को भीतर ही भीतर उखाड़ रहा है, छेद रहा है। आर्यसमाज देशभक्ति की बात करता आया है। इस समाज का स्तंभ ही देशभक्ति के धरातल पर खड़ा है। अगर यह स्तम्भ उखड़ गया तो दुनिया से भारतवर्ष का नाम मिट जाएगा। जहाँ हम देशभक्ति की बातें करते हैं, वहाँ उसको ऊँचा उठाने में आर्यसमाज को आगे आना चाहिए। जब हम किसी विषय पर अपने विचार रख सकते हैं, फिर उनपर अमल करने में हमें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए। आज़ादी की लड़ाई में हज़ारों की तादाद में आर्यों ने गांधी जी का साथ दिया। जेल गए, बेंतें खाईं, देश पर शहीद हो गए। अब देश की बागडोर हमारे हाथ में है तो हमें देश के शत्रुओं के साथ लड़ने में क्या डर है?

आज शत्रु अंग्रेज़ नहीं है, या हैदराबाद का निज़ाम नहीं है। आज हमारा शत्रु हमारा अपना मित्र है, भाई है, पड़ोसी है, हमारा बाँस है, हमारा नेता है। हमें अपनों से ही लड़ाई लड़नी होगी। जो देश का शत्रु है, वह हमारा मित्र नहीं है। वह सिर्फ शत्रु है और शत्रु को शत्रु की तरह नष्ट करना पड़ेगा। अंग्रेज़ों और मुगलों के साथ लड़ना आसान था, परंतु अपने ही शत्रुओं के साथ लड़ना आसान नहीं है। भ्रष्टाचारी कोई भी हो, वह देश और समाज का शत्रु है। आर्यवीरों को इस शत्रु के साथ लड़ना ही पड़ेगा।

पूरे समाज को साथ लेकर एक मुहिम चलानी पड़ेगी जो भ्रष्टाचारियों को बेनकाब करेगी। जो लोग जनता का शोषण कर रहे हैं, उन्हें खोजकर दुनिया के सामने लाना पड़ेगा।

**बदतमीज़ी कर रहे हैं आज फिर मेरे चमन में
साथियो! आँधी उठाने का ज़माना आ गया।**

पड़ोसी का घर जल रहा है- यह सोचकर हम बैठे रहेंगे तो उसके बाद हमारी बारी है। 'मेरा उससे क्या लेना-देना है' - यह स्वार्थपरक प्रमादी वृत्ति हमारे ज़ेहन में बैठी हुई है। जिस महंगाई और बेरोज़गारी की मार जनता झेल रही है, उसकी चपेट में हम सभी आनेवाले हैं। क्यों न समय रहते हम इस पर प्रहार कर दें!

आश्चर्य है कि कोई भी संस्था या संगठन भ्रष्टाचार को समूल नष्ट करने के प्रति गंभीर नहीं दिखाई देता। कहीं कोई बात सामने आती है तो थोड़ी देर के लिए हंगामा किया जाता है, लेकिन बाद में सब-कुछ ठंडा पड़ जाता है। लोग उस घटना को भूल जाते हैं। फिर नए सिरे से भ्रष्टाचार का सिलसिला जारी हो जाता है और जनता उस आग में सुलगती रहती है। बस उसके सिसकने की आवाज़ सुनाई देने लगती है। आर्यसमाज को इसके विरोध में सुनियोजित कार्यक्रम आँकना होगा।

इस उपक्रम के दो पहलू हो सकते हैं-

- (१) भ्रष्टाचारी लोगों के खिलाफ मोर्चा खोला जाय;
- (२) भ्रष्टाचार के विरोध में जन-जागृति पैदा की जाय।

प्रथम उपक्रम में नौजवान, संगठित रूप से भ्रष्ट व्यक्तियों के विरोध में मोर्चा सँभालें। धरना दें, अनशन पर बैठें, सरकार को निवेदन करें, सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों से सामूहिक रूप से शिकायत करें।

यदि सामूहिक तौर पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनमत तैयार करें तो अनेक नौजवान आपके साथ जुड़कर कार्य करेंगे।

नवयुवकों को संघर्ष-भरा कार्य चाहिए। शुरुआत होते ही युवकों की टोलियाँ आपके बैनर के नीचे आ जाएँगी। भ्रष्टाचार के साथ ही जुड़ी दो समस्याएँ हैं- महंगाई और बेरोज़गारी। इन मूलभूत समस्याओं के निश करण के लिए हज़ारों नौजवान आपके साथ जुड़ते चले जाएँगे-

“लोग जब चलते गए तो कारवँ बनाता गया।”

समाज के मूलभूत प्रश्नों और जन-समस्याओं को जब तक आप स्पर्श नहीं करेंगे, लोग आपके साथ कैसे जुड़ेंगे? इस प्रश्न का उत्तर आर्यसमाजियों को अभी समझ में नहीं आया है।

एक समस्या अपने भीतर अनेक समस्याओं को छिपाए रहती है। एक बुराई के अन्दर बहुत-सी बुराइयाँ जुड़ी रहती हैं। भ्रष्टाचाररूपी बुराई में भी बहुत सारी बुराइयाँ छिपी हैं जो जनता को अन्दर ही अन्दर खाए जा रही हैं। जब भ्रष्टाचार के विरोध में हम मोर्चा खोल देंगे तो उनसे सम्बन्धित अनेक पहलू खुलते जाएँगे जिससे अनेक लोग इस मोर्चे के साथ हो जाएँगे। सभी आपकी हिम्मत और कार्यवाही की दाद देंगे।

सभी इसमें आपका साथ देंगे। जैसे-जैसे आप जनता से जुड़ेंगे, आपको एक अलौकिक शक्ति प्राप्त होगी। उसी शक्ति के आधार पर आप आगे बढ़ते चले जाएँगे। सामूहिक शक्ति के बल पर आप इस देश और समाज का तथा आर्यसमाज का पुनरुद्धार कर पाएँगे।

दूसरी तरफ आपको भ्रष्टाचार के विरोध में जनमत तैयार करना पड़ेगा। लोगों को भ्रष्टाचार से हो रहे नुकसान से भी वाकिफ़ कराना होगा।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन-अभियान चलाकर लोगों को इस शत्रु के प्रति आगाह करना पड़ेगा। व्यक्ति दो तरह के होते हैं- एक तो वे, जो संघर्ष के द्वारा कर्मक्षेत्र में उत्तरते हैं; दूसरे वे लोग, जो शान्त भाव से सामाजिक कार्यक्षेत्र में कार्य करते रहते हैं। संघर्ष और आक्रामक स्वभाव के व्यक्तियों को आन्दोलनात्मक संघर्ष में कार्य करने के लिए प्रेरित करना पड़ेगा। शान्त और बुद्धिवादी व्यक्तियों का उपयोग भ्रष्टाचार के प्रति लोगों में जन-जागृति पैदा करने के लिए करना पड़ेगा। आर्यसमाज के नेताओं को चाहिए कि दोनों तरह के व्यक्तियों का उपयोग भ्रष्टाचार को समूल नष्ट करने के लिए करें। संघर्षरत व्यक्ति शान्त भाव से नहीं बैठ सकता, और शान्त प्रकृति का मनुष्य संघर्ष के मैदान में कभी नहीं कूदता। उनका उचित सहयोग उस संस्था के नेतृत्व पर निर्भर होता है।

अतः बुद्धिवादी, शान्त स्वाभावी, सामाजिक कार्यों में रुचि रखनेवाले युवकों तथा शिक्षितों को इस अभियान में शामिल करके भ्रष्टाचार के विरुद्ध जगजागृति-अभियान छेड़ना होगा। इस अभियान से आर्यसमाज में तथा नवयुवकों में नवचैतन्य आएगा। जो लोग आर्यसमाज के झण्डे-तले आकर इस अभियान में शामिल न हो सकें, उन्हें भी प्रेरित करते रहना चाहिए। न उन्हें नाराज़ किया जाना चाहिए, न खुद निराश होना चाहिए।

**वो जगें या न जगें, है ये मुकद्दर उनका,
तुम्हारा फ़र्ज है आवाज लगाते ही चलो।**

हैदराबाद मुक्ति-संग्राम की पचासवीं वर्षगाँठ पर एक नेता ने बड़े पुरज़ोर शब्दों वर्षगाँठ पर एक नेता ने बड़े पुरज़ोर शब्दों में कहा था- “यदि निज़ाम-स्टेट में आर्यसमाज न होता तो हिन्दुओं का जीना मुश्किल हो जाता। आर्यसमाज के कारण ही हैदराबाद स्टेट मुक्त हुआ है।” जब इतने बड़े शत्रु को आर्यसमाज ने धराशायी कर दिया तो भ्रष्टाचार जैसे शत्रु को परास्त करना कौन-सी बड़ी बात है? कमी है सिर्फ़ इच्छा-शक्ति की। आर्यसमाज के नेताओं और कार्यकर्ताओं में इच्छा शक्ति का अभाव है। कारण सोचिये कि हम सक्रियता की ओर से निष्क्रियता की ओर क्यों बढ़ रहे हैं?

आर्यसमाज को चाहिए कि भ्रष्टाचाररूपी राक्षस को नष्ट करने के लिए एक विशाल आन्दोलन छेड़े। इसके लिए शिरोमणि सभा आदेश दे जिससे कि सामूहिक रूप से अभियान छेड़ा जा सके।

‘इन्द्रिय-निग्रह’

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

(क) स्वाभाविक जीवन

जिन अस्वाभाविक अवस्थाओं में हम जीवन व्यतीत करते हैं, उनमें ब्रह्मचर्य का अखण्डित रहना प्रायः असम्भव-सा हो गया है, परन्तु फिर भी शरीर-शास्त्र की दृष्टि से ‘ब्रह्मचर्य’ का अर्थ समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि स्वाभाविक अवस्थाओं में रहते हुए ब्रह्मचर्य का अभिप्राय क्या होगा? उस समय शरीर की आभ्यन्तरिक क्रिया किस प्रकार चल रही होगी?

जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, अण्डकोशों का ‘अन्तःस्त्राव’ जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक निरन्तर होता रहता है। यह स्त्राव स्वयं ही शरीर में खपता रहता है और मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक उन्नति में सहायक होता है। अन्दर ही-अन्दर उत्पन्न होने तथा खप जानेवाले इसी रस को ‘ओज’ कहते हैं। यह पुट्टों को मजबूत करता, स्नायुओं में शक्ति भरता तथा शरीर को तेजोमय बनाता है। १५-२० वर्ष के युवक अथवा युवती के चेहरे में एक ताजगी-सी होती है। चाहे कोई कितना ही काला हो, इस आयु में हर-एक के चेहरे पर सलोनापन होता है। यह ‘अन्तःस्त्राव’ के शरीर में खपने के कारण ही होता है।

परन्तु बहिःस्त्राव में तो अण्डकोशों से ही टूटे हुए अत्यन्त क्षुद्र जीवित-कोष्ठक (लिविंग सैल्स) बाहर निकलते हैं। इन जीवित-कोष्ठकों को अंग्रेजी में ‘स्पर्मेट जोआ’ कहते हैं, यह शुक्र-कीट हैं। मनुष्य का शरीर जब परिपक्व हो जाता है, तभी यह बहिःस्त्राव होता है। यह जीवन में निरन्तर नहीं होता रहता। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले पुरुष के शरीर में यह प्रक्रिया १८ से २० वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होती है और ५०-६० वर्ष की अवस्था तक होती रहती है; इसी प्रकार स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्री के शरीर में यह प्रक्रिया १२-१४ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होती है और ४५-५० वर्ष की अवस्था तक होती रहती है। जैसा अभी कहा गया, शुक्र-कीट एक जीवित-कोष्ठक है, अतः अन्तःस्त्राव की भाँति बहिःस्त्राव शरीर में स्वयं जज्ब नहीं हो सकता। हाँ, योग की शक्तियों तथा विधियों द्वारा इसे भी शरीर में खपाया जा सकता है। प्राचीन भारत के आश्रमों में, जिनका नाम गुरुकुल होता था, यह विद्या सिखाई जाती थी, और जो संयमी पुरुष इस विद्या में दीक्षित होते थे, उन्हें ऊर्ध्व-रेतस् या आदित्य ब्रह्मचारी कहा जाता था, उनका वीर्य आजीवन अखण्डित रहता था। परन्तु यह आदित्य ब्रह्मचारी का जीवन सर्व-साधारण के लिए न था। जो लोग ‘ऊर्ध्व-रेतस्’ के रहस्यों में दीक्षित नहीं हो सकते थे, उनके लिए बहिःस्त्राव

के स्वाभाविक रूप से प्रकट होने का समय ही विवाह का समय रक्खा गया था। भारतीय शरीर-शास्त्रियों के मत में इस देश के जलवायु में पुरुष में पच्चीस वर्ष की अवस्था में, परिपक्व शुक्र-कीट के रूप में, बहिः-स्त्राव उत्पन्न होना चाहिए, अतः उन्होंने युवक की विवाह की आयु भी पच्चीस वर्ष ही बतलाई थी। इसी प्रकार उन लोगों का कथन था कि स्त्री में सोलह वर्ष की अवस्था में, परिपक्व रजःकण के रूप में, बहिःस्त्राव उत्पन्न होना चाहिए, इसलिए उन्होंने युवती की विवाह की आयु भी सोलह वर्ष नियत की थी। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को बचपन कुमारावस्था तथा युवावस्था कभी अशांत नहीं होने देती। उसके सम्मुख इन्द्रिय-निग्रह का प्रश्न ही नहीं होने पाता। पच्चीस वर्ष की अवस्था में अण्डकोशों के जीवित-कोष्ठक (शुक्र-कण) टूट-टूटकर शुक्र-वाहिनी प्रणालिका में से होते हुए शुक्राशय में प्रविष्ट होते हैं और अपनी स्वाभाविक गति से पुरुष में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। यदि इस अवस्था में पुरुष का स्त्री-सम्बन्ध हो, और संयम-पूर्वक रहा जाय, तो वहिःस्त्राव का निकालना हानि-जनक नहीं होगा और न इससे शारीरिक अथवा मानसिक उन्नति में कोई बाधा होगी। इस अवस्था में विवाह हो जाने से अन्तःस्त्राव के कार्य में कोई रुकावट नहीं होगी और स्त्री-पुरुष दोनों को हानि के स्थान में प्रायः लाभ ही पहुँचेगा।

परन्तु, शायद अस्वाभाविक जीवन के इस युग में हमें स्वाभाविकता पर विचार करने का भी अधिकार नहीं। प्रकृतिमाता के सौम्य मुख पर हमने अपने घृणित कार्यों के कलंक का टीका लगा रक्खा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारा अप्राकृतिक जीवन आजकल के बच्चों को उम्र से पहले ही पका देता है और इसीलिए छोटी ही आयु में उनमें कुत्रिम उपायों द्वारा बहिःस्त्राव उत्पन्न होने लगता है। स्वाभाविक जीवन की सौम्यता कहीं देखने को भी नहीं मिलती। वह आज केवल काल्पनिक शरीर-शास्त्र का अथवा बहस का ही विषय रह गई है। एक दृष्टि से जिस जीवन को हम स्वाभाविक कह रहे हैं वह आज के समाज में काल्पनिक जीवन कहा जा सकता है; जिसे हम अस्वाभाविक कह रहे हैं वह वास्तविक जीवन कहा जा सकता है। वर्तमान जीवन को समझने के लिए ‘अस्वाभाविक जीवन’ का, अथवा ‘अप्राकृतिक जीवन’ का, अथवा अवास्तविक जीवन का, उस जीवन का जिसमें हम सब सम्भव उपायों से ब्रह्मचर्य के मूलभूत नियमों का उल्लंघन करते रहते हैं, अध्ययन करने की आवश्यकता है।

माघ - २०७५ (२०१९)

Post Date : 25-02-2019

MCN/136/2019-2021

MAHRIL 06007/31/12/21-TC

पोस्ट आफिस : सांताक्रुज (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,
२६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन,
वी. पी. रोड, (लिकिंग रोड), सान्ताक्रुज (प.) मुंबई-४०० ०५४.
से प्रकाशित किया। ● दूरभाष : २६६० २८००/२६६० २०७५

प्रति,

टिकट

(ख) अस्वाभाविक जीवन

इस समय मानव-माज के स्त्री-पुरुष अप्राकृतिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अतः सर्वत्र ही इन्द्रिय-निग्रह का अत्यान्त अभाव दिखाई देता है। संयम नाम-मात्र को भी नहीं रहा। इन्द्रिय-संयम मुख्यतः दो रूपों में तोड़ा जा रहा है- 'जान-बूझकर' और 'बिना जाने-बूझे'।

(१) जान-बूझकर संयम-हीन जीवन व्यतीत करने का अभिप्राय क्या है? यही कि शरीर तथा मन को, आँखें खुली होते हुए भी विषय-वासना की कुलुषित वेदी पर बलि चढ़ा दिया जाय और इस घोर पाप की जिम्मेवारी भी अपने ही कंधों पर हो ! माना कि इस पाप में हमने खुल्लमुखुल्ला अपनी सहमति न दी हो, माना कि किसी-किसी समय हमने इस गढ़े में गिरने से बचने की भी चेष्टा की हो, परन्तु फिर भी प्रलोभन आने पर हम सँभल न सकें; यद्यपि उस समय हमारी आँखें खुली हों, हम जाग रहे हों, परन्तु फिर भी देखते-ही-देखते गढ़े में गिर पड़ें! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पाप के प्रति घृणा तथा अनिच्छा हमारी रगों में कूट-कूटकर भरी होती है; हम समझते हैं कि हमारी गिरावट में हम कारण नहीं, परन्तु थोड़ा अनुसन्धान करने पर पता लग जाता है कि हमारी ही चेतना के एक कोने में हमारी ही 'इच्छा' का एक लचकीला तंतु, जो समय पड़ने पर विशाल रूप धारण कर लेता है, छिपा था, और उसीने हमें ठीक मौके पर धोखा दिया। पहले एक साधारण-सी 'प्रवृत्ति' उत्पन्न हुई, फिर छोटी-सी 'इच्छा' बनी; यह इच्छा अनेक बार हुई और 'आदत' या 'लाचार' बन गई; फिर वही पकती-पकती 'प्रकृति' 'स्वभाव' हो गई-यही उपक्रम अविरत रूप से चलता है और इसमें 'जागरूक अच्छा' की एक अविकल श्रृंखला दृष्टिगोचर होती है। अनिच्छा में कहीं इच्छा का बीज चिफा हुआ रहता है, जो कभी अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रादुर्भूत हो जाता है। ऐसी अवस्था में जब मनुष्य सहसा अपने आत्मा को किसी गिरावट के गढ़े में गिरा हुआ पाता है, तो सहसा उसके मुख से निकल पड़ता है:-

'जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः।'

अर्थात् 'मैं जानता हूँ धर्म क्या है, परन्तु फिर भी उधर नहीं जाता;

मैं जानता हूँ अधर्म क्या है, परन्तु बरबस पाँव उधर ही मुझे धसीटता है।' दुर्भाग्यवश, यह अवस्था जो अत्यन्त भयानक है, अत्यन्त फैली हुई भी दीख पड़ती है। हम अपने हाथों से ही अपनी इमारत की आधार-शिला को हिला देते हैं, अपने-आप आत्मिक अधःपतन के गढ़े में कूद पड़ते हैं, जानते बूझते मृत्यु तथा सर्वनाश के मुख की तरफ क्रदम बढ़ाते जाते हैं। इस मूर्खता की भी कोई सीमा है कि हम अपनी हत्या अपने-आप ही करते हैं? सर्वनाश, और वह भी जान-बूझकर! मृत्यु, और वह भी अपने ही हाथों! क्या परमात्मा के राज्य में इससे बड़ा पाप भी सोचा जा सकता है? जान-बूझकर दुराचार का जीवन व्यतीत करना ही व्यभिचार कहाता है। यह व्यभिचार, यह संयम-हीनता कई तरह की है। मुख्यतः इसके तीन भेद हैं- 'आत्म-अभिचार' (हस्त-मैथुनादि), 'पत्नी-व्यभिचार' तथा 'वेश्या-व्यभिचार'।

(२) यह तो हुई जान-बूझकर संयम-हीनता ! बिना जाने- बूझे भी संयम टूट जाता है और यह प्रायः जागते नहीं, परन्तु सोते समय होता है। इसीलिए इसे 'स्वप्नदोष' कहते हैं।

जीवन में काम-वासना का उदय किस समय होना चाहिए, इसे हमने दो भागों में बाँटा-स्वाभाविक जीवन तथा अस्वाभाविक जीवन। स्वाभाविक जीवन तो कल्पना की वस्तु है, वह आज कहीं दीखता ही नहीं। इसलिए उसपर अधिक लिखने की आवश्यकता भी नहीं। अस्वाभाविक जीवन के हमने फिर दो भाग किये-जान-बूझकर संयम तोड़ना तथा बिना जाने हुए टूट जाना। जान-बूझकर संयम-हीनता को हमने तीन भागों में विभक्त किया-आत्म-व्यभिचार (हस्तमैथुनादि), पत्नी व्यभिचार तथा वेश्या व्यभिचार। बिना जाने हुए संयम टूट जाने को हमने स्वप्नदोष कहा। अगले चार अध्यायों में हम इन्हीं चारों का क्रमशः विवेचना करेंगे तथा इनके कारणों, परिणामों और उपचारों पर विचार करेंगे। इन चारों अध्यायों में हमारी आधार-भूत समस्या यही होगी कि किस प्रकार 'अन्तःस्त्राव' को शरीर के भीतर ही खपाया जाय, क्योंकि 'अन्तःस्त्राव' (हॉर्मोन) को नष्ट न होने देना ही वैज्ञानिक परिभाषा में 'ब्रह्मचर्य' है।